भेदविज्ञान

– डॉ. संजीवकुमार गोधा

तत्त्वविचार...   भेदविज्ञान...   आत्मानुभूति...

भेदविज्ञान

लेखक
डॉ. संजीवकुमार गोधा, जयपुर
एम.ए. द्वय (जैन विद्या तुलनात्मक धर्म-दर्शन, इतिहास)
नेट, एम.फिल (जैन दर्शन), पीएच.डी.

प्रकाशक
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302 015
फोन : 0141-2707458, 2705581
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

तत्त्वविचार..भेदविज्ञान..आत्मानुभूति : डॉ. संजीवकुमार गोधा

● **प्रथम संस्करण** : 2 हजार
(17 फरवरी, 2024)
डॉ. संजीवकुमार गोधा की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर

मूल्य : **15 रुपये**

प्राप्ति स्थल –
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर
मो. **7412078703**

मुद्रक :
अक्षत प्रिंटर्स
जयपुर (राज.)

प्रकाशन सहयोगी

अ. सौ. सीमाबेन हितेशकुमार गांधी
अ. सौ. मालविका अनुज गांधी
कु. अनविका गांधी
बोरीबली, मुम्बई (महा.)

प्रकाशकीय

जिनागम के चारों ही अनुयोगों के मर्मज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. संजीवकुमार गोधा अब हमारे बीच नहीं रहे। भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की जैनसमाज उनके प्रवचनों को बड़े आदर से सुनती थी, इतनी अल्पवय में वे सम्पूर्ण जैन समाज के हृदय के हार बन गये थे। आज उनकी रिक्तता की पूर्ति होना असम्भव-सा लग रहा है; परंतु उनके द्वारा लिखित कृतियों के माध्यम से उनकी कमी की कुछ भरपाई करने का प्रयास कर रहे हैं। आपकी प्रकाशित कृतियाँ **कालचक्र, समुद्घात, कर्मचक्र से सिद्धचक्र और जिनागम के आलोक में : तीन लोक** आपके हाथों में पहुँच चुकीं हैं।

इसी क्रम में अब उनकी नवीनतम कृति **तत्त्वविचार-भेदविज्ञान-आत्मानुभति** आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

इस कृति में आत्मानुभूति की प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है। वह आत्मानुभूति ज्ञानी जीवों को भेदविज्ञानपूर्वक ही होती है। भेदविज्ञान की विधि समयसार जी आदि ग्रंथों में वर्णित है; उसी भेदविज्ञान की विधि को बहुत ही सरल रूप से विभिन्न उदाहरणों के साथ इस पुस्तक में लिपिबद्ध किया है। भेदविज्ञान और तत्त्वविचारपूर्वक ही आत्मानुभूति की प्राप्ति होती है; अतएव प्रत्येक मोक्षार्थी जीव के लिए यह कृति अत्यन्त लाभदायक है।

डॉ. संजीव गोधा ने 13 ग्रंथों का संपादन व अनेक शोध लेख लिखे हैं। इस कृति के अतिरिक्त भी कुछ अन्य पुस्तकों का प्रणयन भी आपके द्वारा किया गया है, जिनका प्रकाशन यथाशीघ्र किया जाएगा।

इस कृति के प्रकाशन का दायित्व सदा की भांति विभाग के प्रभारी डॉ. अखिल बंसल ने बखूबी सम्भाला है तथा इस कृति को परिष्कृत करने में पण्डित अनिल शास्त्री, जयपुर व पण्डित अखिल शास्त्री, मंडीदीप का सहयोग भी सराहनीय रहा है। अतः सभी का आभार।

इस कृति का अध्ययन कर सभी विज्ञजन अपना आत्मकल्याण करें - यही भावना है।

बिपिन जैन 'शास्त्री', मुम्बई
प्रकाशन मंत्री

अंतर्भावना

इस दुषम पंचम काल में जिनदेव का जब हो विरह।
तब मातसम उपकार करते शास्त्र ही आधार हैं।।

श्री संजीवकुमारजी गोधा सरल शैली में प्रवचन करने वाले जन-जन के प्रिय विद्वान हैं।

बाल्यकाल से ही उनकी धर्म में रुचि रही है। विवाह उपरांत भी वे घर-गृहस्थी के विकल्पों में अधिक नहीं उलझे और निरंतर तत्त्व-प्रचार ही करते रहे; जिसकी मैं साक्षी रही हूँ।

उनकी भावना जिनधर्म के प्रचार-प्रसार की ही रही है; जिस हेतु उन्होंने अनेक ग्रंथों पर प्रवचन तथा लेखन कार्य किया है। प्रवचनों के क्रम में आत्मार्थियों के सबसे प्रिय विषय तत्त्वविचार-भेदविज्ञान-आत्मानुभूति पर मुम्बई के एक साधर्मी (हितेश भाई) के निवेदन पर उन्होंने बहुत ही मार्मिक प्रवचन किए हैं जो कि जन-जन को मोक्षमार्ग में लगाने वाले हैं; ये प्रवचन सभी को अवश्य सुनने चाहिए।

प्रस्तुत कृति तत्त्वविचार-भेदविज्ञान-आत्मानुभूति उन्हीं प्रवचनों को आधार बनाकर आपके समक्ष प्रस्तुत की गई है।

सभी इस कृति का अध्ययन करते हुए तत्त्वविचारपूर्वक भेदविज्ञान करते हुए आत्मानुभूति प्राप्त करें। इसी पवित्र भावना के साथ आपके कर कमलों में यह कृति समर्पित है।

– संस्कृति गोधा

भेदविज्ञान

प्रत्येक आत्मार्थी जीव का एकमात्र उद्देश्य है कि येन-केन-प्रकारेण आत्मानुभव हो जाए, भेदविज्ञान हो जाए। यह भेदविज्ञान नियम से तत्त्वविचारपूर्वक ही होता है। अतः सर्वप्रथम तत्त्वविचार ही किया जाना चाहिए; परन्तु तत्त्वविचार कैसे करें? आज तक तत्त्वविचार के बिना हमने अनंतकाल संसार में बिताया है। न कभी तत्त्वविचार ही किया और न कभी तत्त्वनिर्णय ही हो पाया। संसार और मुक्ति का सारा खेल निर्णय मात्र का ही तो है। गलत तत्त्वनिर्णय से अनंत संसार और सही तत्त्वनिर्णय से मुक्ति की प्राप्ति। आज तक इस जीव ने तत्त्वनिर्णय के लिए प्रयत्न ही नहीं किए। यदि कभी कुछ प्रयास किए भी तो विपरीत दिशा में किए। वे सच्चे प्रयास नहीं थे। इसलिए उनका यथार्थ फल भी नहीं मिला।

अत: समस्त आत्मार्थियों के मन में एक प्रश्न खड़ा होता है, जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आखिर हम करें क्या? सम्यग्दर्शन के लिए, आत्मानुभूति के लिए, भेदविज्ञान के लिए, मोक्षमार्ग में कदम रखने के लिए, अतीन्द्रिय आनंद के लिए हम क्या करें? कुछ लोग पूछते हैं कि हमें करना क्या है, कोई काम बतला दीजिए। इस जीव को धर्म के नाम पर कुछ न कुछ करना ही दिखता है। पर वास्तव में भेदविज्ञान, तत्त्वविचार के बिना कुछ भी करो; कार्यकारी नहीं है। पंडित टोडरमलजी साहब मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ के पृष्ठ नंबर 260 पर लिखते हैं कि -

देखो, तत्त्वविचार की महिमा! तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरणादिक करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं; और तत्त्वविचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।

अब समझ में नहीं आता है कि तत्त्वविचार में ऐसा क्या है कि जिसके बिना तपश्चरण और शास्त्राभ्यास आदि अनेक बातें भी निरर्थक हो जाती हैं तथा ये सब बातें न होने पर भी तत्त्वविचार वाला सम्यक्त्व का अधिकारी हो जाता है। यह तत्त्वविचार क्या होता है? और कैसे करें तत्त्वविचार? यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है।

बहुत से लोग पूछते हैं कि भेदविज्ञान और तत्त्वविचार कब करें? मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि डॉक्टर के यहाँ कब जाएँ? जनवरी में या फरवरी में? जुलाई में या अगस्त में? रविवार या सोमवार को? शायद ये प्रश्न सुनकर आपको हँसी आ रही होगी। आप कहेंगे कि महीने या दिन देखकर डॉक्टर के पास नहीं जाया जाता; जब बीमार हों तभी जाना चाहिए।

अब जरा विचार करें कि हमें भी यहाँ अनादि काल से कर्म-बंधन रूपी रोग लगा हुआ है तो इसका इलाज कब करें? जवाब यही होगा कि चूँकि रोग निरन्तर है, इसलिए इलाज की जरूरत भी प्रति समय ही है। लेकिन करें क्या?

कुछ धनसम्पन्न लोग यहाँ तक कह देते हैं कि आप कहो तो लाख दो लाख रुपये दान दे सकते हैं। यदि आप कुछ और काम करवाना चाहो तो वह भी कर सकते हैं; लेकिन भेदविज्ञान क्या है यह समझ में नहीं आता। यदि आप कहो कि चारों समय प्रवचन सुनने हैं तो हम वे भी सुन सकते हैं; लेकिन भेदविज्ञान में क्या करना होता है, यह हमारी समझ से परे है। आप ही बता दीजिए कि भेदविज्ञान के लिए हमें कितना समय निकालना होगा?

भाई! यह तो निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, इसे समय में नहीं बाँधा जा सकता है, इसका कोई शॉर्टकट भी नहीं है। सम्यग्दर्शन, भेदविज्ञान अथवा तत्त्वविचार के लिए कोई शॉर्टकट नहीं होता। प्रति समय तत्त्वविचार करते रहना चाहिए। जब कोई हमसे पूछता है कि यह भेदविज्ञान कब करें? तब हम कहते हैं कि **कब न करें।**

चाहे घर में रहें, चाहे वन में रहें... तत्त्वविचार तो प्रतिसमय करते रहना चाहिए। आराधक ज्ञानियों के जीवन में सुबह से लेकर शाम तक निरन्तर तत्त्वविचार चलता रहता है। उनका प्रतिक्षण-प्रतिपल तत्त्व विचार में ही बीतता है।

तत्त्वविचार अर्थात् वस्तु के स्वरूप का विचार। अब यहाँ प्रश्न यह है कि तत्त्वविचार करें कैसे? क्योंकि करने योग्य कार्य तो एकमात्र यही है; हमने उपवास करके देख लिया, काम नहीं हुआ। हमने व्रतादिक अंगीकार करके भी देख लिए, उससे भी काम नहीं हुआ।

अष्टपाहुड़ में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्द देव ने लिखा है कि इतनी बार इस जीव ने मुनिव्रत अंगीकार किए हैं कि यदि उनके पिच्छी-कमंडलों का ढेर लगाया जाए तो सुमेरु पर्वत के बराबर हो जाए। दीक्षा लेते समय अपनी माताओं को इतना रुलाया है कि यदि उन माताओं के आँसुओं को इकट्ठा किया जाए, तो समुद्र भर जाए। जरा सोचिए कि हमने क्या नहीं किया।

अनादि काल से आज तक हमने तत्त्वविचार के सिवाय सबकुछ किया। व्रत धारण किए, प्रतिमाएँ लीं, नियम लिए, उपवास किए, त्याग किया, तपस्या की – ये सब कुछ हमने अनंत बार किए; फिर भी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। आखिर क्यों? क्योंकि इन सब कार्यों के बीच में तत्त्वविचार नहीं था, भेदविज्ञान नहीं था। अब हमें वही कार्य करना है, जो आज तक नहीं किया।

तत्त्वविचार के लिए क्या करें? सबसे पहले तत्त्व को समझें, फिर उसका विचार करें। तत्त्व किसे कहते हैं? **'तस्य भावस्तत्त्वं'** अर्थात् वस्तु के भाव अथवा स्वरूप को तत्त्व कहते हैं। जब वस्तुस्वरूप का विचार करते हैं, तब तुरन्त ही सब दुःख मिट जाते हैं। जैसा कि **'मेरी भावना'** की अंतिम पंक्ति में कहा गया है –

वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख संकट सहा करें।

तत्त्वविचार के माध्यम से समस्त दुःख दूर हो जाते हैं अर्थात् दुःखजन्य बाहरी परिस्थितियों में सहज रहना आ जाता है। इसके माध्यम से बाहर में बनने वाले बड़े से बड़े संकट के काल में भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

तत्त्वविचार के लिए हमें सदैव यह देखना चाहिए कि यह वस्तु कैसी है? जगत कैसा है? इस जगत का स्वरूप कैसा है? गहराई से विचार करने पर हमें वस्तु का स्वरूप स्वतंत्र दिखाई देता है। इस दुनिया में घटने वाली घटनाओं को देख-देखकर निरन्तर विचार करते रहना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, जैसे कहीं बादल फट जाते हैं, कहीं बिजली गिर जाती है, कहीं तूफान तो कहीं सुनामी जैसी लहरें... कहीं सूखा पड़ रहा है तो कहीं बाढ़ आ रही है, कहीं भूकम्प आ रहा है तो कहीं ज्वालामुखी फट रहे हैं। ये सब क्या हो रहा है और कौन कर रहा है। यह तो निश्चित है कि ये सब किसी के करने से नहीं हो रहे हैं, इसप्रकार यह विचार करना कि कोई किसी का कर्त्ता-धर्ता नहीं है, यह अकर्त्तापन का चिन्तन ही तत्त्वविचार का प्रथम चरण है। कोरोना जैसी महामारी के काल में बनी दुनिया की परिस्थितियों को देखकर भी यह विचार किया जा सकता है कि कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है।

आप प्रतिदिन न्यूज़पेपर के पृष्ठ बदलते हुए भी तत्त्वविचार कर सकते हैं। न्यूज़पेपर में अनेक ऐसी घटनाएँ पढ़ने को मिलेंगी जो आपको संसार से, शरीर भोगों से विरक्त होने को मजबूर करेंगी। यहाँ भेदविज्ञान के पहले लेवल की बात कर रहा हूँ। धीरे-धीरे भेदविज्ञान और तत्त्वज्ञान आगे बढ़ेगा और धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला जाएगा। जब आप न्यूजपेपर के पन्ने पलटते हैं, जब आप टी.वी. देखते हैं तो इन घटनाओं को देखकर निरंतर संसार से भयभीत भी होना चाहिए और आत्मोन्मुखी होने का पुरुषार्थ भी होना चाहिए। हमें तो यहाँ इस बात का निर्णय करना है कि मैं ये सब कब करूँ और कैसे करूँ?

अधिकतर मुमुक्षु साधर्मियों की यह जिज्ञासा रहती है कि पण्डितजी यह बता दीजिए कि प्रैक्टिकल कैसे करें? सवाल तो प्रैक्टिकल करने का है थ्योरी तो बहुत पढ़ रखी है। समयसार, गोम्मटसार, नियमसार आदि ग्रन्थों का बहुत गहराई से अध्ययन किया है। प्रवचन भी खूब सुन लिए; लेकिन अब प्रैक्टिकल कैसे करें? प्रैक्टिकल करने के लिए क्या किया जाए? प्रैक्टिकल करने के लिए कौन-सी लैबोरेट्री में जाएँ। बचपन में जब स्कूल जाते थे वहाँ क्लास में तो थ्योरी पढ़ते थे और फिर प्रैक्टिकल के लिए लैब में जाते थे। स्कूल-कॉलेज में यही अंतर होता है? वहाँ किताब होती थी, सामने टीचर बैठते थे और किताब के माध्यम से थ्योरी पढ़ाते थे और फिर कहते थे चलो अब प्रैक्टिकल करने के लिए पूरी क्लास लैब में चलेगी और फिर वहाँ प्रैक्टिकल कराते थे।

अब यहाँ हमने थ्योरी तो पढ़ ली अब प्रैक्टिकल कैसे होगा? यह जो थ्योरी है वह दिन में 2-4 घंटे पढ़ी जाती है और प्रैक्टिकल चौबीसों घण्टे होता है। बस वही तो हम नहीं कर पा रहे हैं। प्रैक्टिकल कैसे करें? तो कहा कि वैसा ही काम करना है जैसा मैंने न्यूज़पेपर पढ़ते समय बतलाया था। जैसे कि दुकान पर बैठे-बैठे अभी न्यूज़पेपर में जो घटनाएँ पढ़ी थीं, उन सारी घटनाओं से भेदविज्ञान की चर्चा अत्यंत दूर उपचरित असद्भुत में उपचरित में भी उपचरित है।

इतनी दूर की घटनाओं से हमारा कुछ भी लेना-देना नहीं था। बिहार में बाढ़ आ गई, अब इस घटना से हमारा क्या लेना-देना? राजस्थान में बिजली गिरी, उससे पश्चिम बंगाल वालों को क्या लेना-देना? समझ में आ रही है बात? थोड़ा-सा नज़दीक आइए, यहाँ से भेदविज्ञान करते हुए और नजदीक आ करके बताइए कि आपकी व्यापार में कितनी चलती है, अब विचारकर बताइए कि तत्त्वविचार करना है या नहीं।

''होता स्वयं जगत परिणाम मैं जग का करता क्या काम।''

कई बार काम होते-होते बिगड़ जाता है और बिगड़ते-बिगड़ते हो जाता है और फिर होते-होते कहीं अटक जाता है, फिर अटके-अटके बहुत अच्छा होने की कहीं संभावना दिखती है फिर हम कहने लगते हैं कि शायद कुछ बहुत अच्छा होना था इसलिए अटक रहा था और फिर क्या होता है जितना अच्छा सोचते हैं उतना अच्छा नहीं होता है। यह हो क्या रहा है, यह फिरकी कौन ले रहा है, इसप्रकार कितने उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, हम प्रतिदिन नहीं देखते हैं? आपमें से कुछ व्यापारी होंगे, कुछ जॉब वाले होंगे, कुछ स्टूडेंट होंगे, कुछ घर-गृहस्थी वाली माताएँ-बहनें होंगी, सब तरह के लोग होंगे जो इस तरह की उतार-चढ़ाव वाली घटनाएँ प्रतिदिन देखते-सुनते होंगे।

हमारे यहाँ हर प्रांत के, बहुत सारे देशों के, हर उम्र के सब तरह के लोग हैं और सभी की परिस्थितियाँ अलग-अलग हैं, यहाँ तो यह विचार करना है कि हमारे करने से क्या हो रहा है और यदि मेरे करने से कुछ नहीं हो रहा है तो वहाँ से मुझे दृष्टि हटा लेनी चाहिए। मैं तो बिजनेस करना चाहता था। फिर क्यों जॉब में चला गया, मैं तो जॉब करना चाहता था फिर क्यों बिजनेस में चला गया, मैं तो किसी वस्तु का व्यापार करना चाहता था और किसी अन्य वस्तु का व्यापार करने लगा - ये सब विचार आपको एकांत में बैठकर करने हैं। देखिए चौबीसों घंटे तो भेदविज्ञान चलना ही चाहिए; लेकिन कुछ समय अपने लिए ऐसा भी निकालना चाहिए जिस समय हम हर तरफ से निवृत्त होकर, शान्त चित्त होकर एकांत में बैठें और विचार में मग्न हो जाएँ। यहाँ मैं आपको तत्त्वाभ्यास के चरण बतला रहा हूँ, यहाँ पहले थ्योरी पढ़ना बहुत जरूरी है। जिन लोगों ने थ्योरी नहीं पढ़ी हो, जिन लोगों ने स्वाध्याय नहीं किया हो, जिन लोगों ने 2-4 साल गहराई से प्रवचन न सुने हों, उन्हें तो कुछ नहीं होगा। पहले तो जिनवाणी के अवलंबन से दो चार साल अभ्यास कीजिए, जब बहुत गहरा अभ्यास हो जावे तब इसे सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, नहाते-धोते, बिजनेस में, दुकान

पर, जॉब पर, ट्रेन में चलते-चलते, गाड़ी चलाते-चलाते, सीढ़ियाँ चढ़ते हुए प्रैक्टिकल महसूस करने का प्रयत्न कीजिए।

इन बातों को अब हमको बराबर प्रैक्टिकल महसूस करना है कि यह कैसे हो रहा है? इसे कौन कर रहा है? और ये सब विचार प्रतिदिन सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक तो बराबर चलने ही चाहिए, परन्तु इतने विचार मात्र से कार्य नहीं होगा। हमें भेदविज्ञानपूर्वक आत्मानुभूति तक पहुँचना है। विचार मात्र से कार्य नहीं चलेगा इसलिए कहते हैं कि यह जो चलते-फिरते हो रहा है, यह तो रेगुलर चलने ही देना है।

जैसे डॉक्टर जब किसी रोग की दवाई बतलाता है, तो कई तरीके की बातें कहता है। आपको यह करना पड़ेगा, आपको परहेज करना पड़ेगा और आपको साथ-साथ में यह भी लेना पड़ेगा। आप 15 दिन का प्राणायाम करोगे तो आपको यह दवा ज्यादा असर करेगी आदि। यह काम तो आपको रोजाना करना ही है और इसके साथ में आपको यह भी खाना है आदि। इसी तरह से हमारे भी वीतरागी संतों ने यही बात कही है कि सबसे पहले आपको निरंतर प्रतिदिन स्वाध्याय तो करना ही है। गुरुदेवश्री के शब्दों में कहूँ तो 4-6 घंटे स्वाध्याय तो प्रतिदिन करना ही चाहिए। कम-से-कम 4-6 घंटे कोई बहुत-ज्यादा थोड़ी न बता रहा हूँ। यदि 24 घंटे में 4-6 घंटे ज्यादा लग रहे हैं तो अब हम इसी बात को दूसरे शब्दों में कहते हैं कि सुन विषय-कषाय और व्यापार की चर्चा के लिए तुझे 18-20 घंटे चाहिए। तब तुझे लगता है कि ठीक है तो यही तो हम पहले कह रहे थे, हमने मात्र वाक्य ही तो बदला है और क्या किया। हमने 18-20 घंटे व्यापार, विषय-कषाय के लिए दिए तो इसका मतलब यही हो गया न कि 4-6 घंटे स्वाध्याय के लिए, आत्म-कल्याण के लिए देने चाहिए। वाक्य को बदला और क्या किया; लेकिन जब हमने 4-6 घंटे स्वाध्याय करने की कही तो भारी लगने लगा था, माथे पर वजन लगने लगा था और जब यही बात हमने दूसरी तरह से कही कि 18-20 घंटे तुम्हारा जो मन

हो, जिस में खुशी मिले, वह करो तो यह ठीक है। अब भेदविज्ञान के लिए 24 घंटे का अभ्यास करना है, निरंतर 24 घंटे के अभ्यास के साथ-साथ कुछ देर बैठकर निज का चिन्तन करना चाहिए -

''दो घड़ी निज नाथ के नज़दीक तो आओ
अपनी प्रभुता देख लो बाहर न भरमाओ।''

अर्थात् दो घड़ी तक संसार के सारे कार्यों से निवृत्ति लेकर निज का ही चिन्तन-मनन करना चाहिए।

कोई किसी के अधीन नहीं : अरे! छह खण्ड पर जिनकी चलती थी, उनकी अपने बेटे पर ही न चली; मैं भरत चक्रवर्ती की बात कर रहा हूँ। छह खंडों में एक व्यक्ति ऐसा नहीं था जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकता हो। 32,000 मुकुटबद्ध राजाओं में किसकी हिम्मत थी, जो पलट कर एक वाक्य भी कह सकें। इतनी सारी अनुकूल परिस्थितियाँ सब अपनी इच्छा अनुसार होने पर भी यदि उनका बेटा, उनकी आज्ञा में और उनके निर्देशन में नहीं चला तो फिर नहीं चला। अब कर लो आप भेदविज्ञान। एड़ी से चोटी तक का जोर लगाओ। मैं तो कहता हूँ कि भरतजी को तो क्या कहें वह तो सिद्धालय में जाकर के विराजमान हो गए; लेकिन भरतजी ने भी भेदविज्ञान का अभ्यास ऐसे ही किया होगा कि यह बेटा भी मेरे हिसाब से नहीं चल रहा है। कभी आँखें आपके हिसाब से नहीं चलतीं, कभी कान दर्द करने लग जाते हैं, कभी बच्चा हमको पलटकर जवाब दे देता है, कभी लाइट चली जाती है, कभी ए.सी. खराब हो जाता है, चलते-चलते घुटनों में से खड़खड़ की आवाज आनी शुरू हो जाती है। कभी ऐसा होता है कि ए.सी. चल रहा होता है और अचानक ही इसी के अंदर से पानी टप-टप बेडरूम में टपकने लग जाता है, कभी कुछ होता है और कभी कुछ होता है। ये परिस्थितियाँ बतला रही हैं कि हम चाहते तो कुछ और थे और हो गया कुछ और। इसका मतलब हमारे चाहने से नहीं हो रहा है। इसकी हमें प्रैक्टिस करनी

है। इसका अभ्यास करना है, इन बातों को हाइलाइट करना है। अभी हम किसे हाइलाइट करते हैं कि सब अपने ही हैं; परन्तु भाईसाहब।

'मित्र अरि हो जात जगत में, अशुभ उदय के आने से'

अभी तो हमें दिखाई देता है राजा बेटा है, बहुत लाड़ला, बहुत आज्ञाकारी है, यह तो हमारे बहुत अनुकूल है। अरे पुण्य का उदय है।

पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया।
तीजा सुख सुलक्षणा नारी, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।।

अरे हम तो धन्य हो गए भाईसाहब, सुलक्षणा नारी, आज्ञाकारी पुत्र और वैभव सबकुछ अनुकूल प्राप्त हो गया। अत्यंत सुंदर स्वस्थ शरीर, इसे देख कर भैया हम तो धन्य हो गए। सुनो! तुम्हारा यह धन्यपना पाँच मिनट में खत्म हो जाएगा। आँखें जलने लगेंगी, यह क्या हो गया, यह क्या स्थिति है। इसे देख-देख करके आपको लगता नहीं है, जिन्हें आप अपना कह रहे थे कि हम तो बहुत भाग्यशाली हैं, इसे भाग्य नहीं कहते हैं। यह भाग्य कब दुर्भाग्य में बदल जाए पता नहीं चलेगा, यह विचार करना है। दुनिया की परिस्थितियाँ तो रोजाना हमें न्यूज़पेपर में दिखेंगी और दुनिया में होने वाली उठापटक रोजाना हमको दुकान पर दिखेगी। फिर दुकान से घर आ जाने पर पत्नी-पुत्र, माता-पिता, परिवार, भाई-बहन, सगे-संबंधी इनके साथ होने वाली तू-तू, मैं-मैं, खींचतान। अरे! 24 घंटे में यदि 23 घंटे 48 मिनट बहुत प्यार से रहे और 12 मिनट के लिए यदि खींचतान का वातावरण बना। अरे! 12 क्या यदि 2 मिनिट के लिए भी बना, तो जिनवाणी कहती है कि 2 मिनिट को हाइलाइट करके भेदविज्ञान का अभ्यास करो।

यह जिनवाणी कह रही है कि अंदर में यह बात बराबर पता चलनी चाहिए कि यह जगत का परिणाम स्वतंत्र है, कोई किसी का नहीं है - यह बात तत्त्वविचार है और यह तत्त्वविचार की बात गृहस्थी में वाणी के लेवल पर मत ले आना, यदि यह विचार की बात वाणी के लेवल

पर आएगी तो फिर वाणी तक न रहकर हाथ चल जाएँगे, घर टूट जाएँगे, गड़बड़ हो जाएगी। भाईसाहब यह बात विचार करने की है, यह अंतरंग धारा की बात चल रही है।

और इस अंतरंग धारा की बात को यदि ऐसे कह देवें कि कोई किसी का नहीं है। पति पत्नी से या पत्नी पति से आपस में यह कह दे कि कोई किसी का नहीं है तो पत्नी बोलेगी कि अब तुम खाना खाने के लिए बैठो, फिर मैं तुम्हें बताती हूँ कि कोई किसी का नहीं है। भैया जगत में तो रागरूप वचन, जिस तरह के हैं वैसे ही चलते रहेंगे और ज्ञानियों के माध्यम से वैसे ही वचन कहे भी जाते रहेंगे; लेकिन उसके बावजूद भी अंतर में भेदविज्ञान की धारा बराबर चलती है। अरे भाई! मैं परिवार की क्या बात कर रहा हूँ यह देह भी तो मेरे कंट्रोल में नहीं चलती है। यह देह मेरे हिसाब से नहीं चलती – इस बात को जरा हम हाइलाइट करते जाते हैं। जब-जब कोई परेशानी हो, जैसे उड़ते हुए बालों को देखकर, हिलते हुए दाँतों को देखकर, चलती हुई पेट की गड़बड़ को देखकर आप इस तरह का विचार कीजिए कि इसका परिणाम स्वतंत्र है।

अब यह सब तो चल ही रहा है और प्रैक्टिकल 24 घंटे का होमवर्क है। यह जो बात मैं कह रहा हूँ कि 24 घंटे में 4-6 घण्टे प्रवचन/व्यक्तिगत स्वाध्याय, फिर न्यूज़ पेपर के माध्यम से, टी.वी. चैनल पर घटित होने वाली घटनाओं के माध्यम से और यह आज तक, अभी तक, 1 मिनट तक भी चलते हैं न्यूज़ चैनल, उन सबके माध्यम से और दुकान पर बैठे-बैठे, ऑफिस में काम करते-करते, जॉब पर किसी ने किसी से कुछ कह दिया जो हमारे कर्मचारी थे, साथ में काम करने वाले थे। उन सबको प्रैक्टिकल करते-करते और फिर बाहर से आते-आते कहाँ तक आ गए। घर तक आ गए, परिवार तक आ गए, घर और परिवार से शरीर तक आ गए, इतना सब कर लेने के बाद अब दो घड़ी शान्त चित्तपूर्वक बैठना है, शांत चित्त से अब करो भेदविज्ञान का

अभ्यास, वस्तु-स्वरूप का विचार, विचारों में क्या चलना चाहिए। अनित्यता का चिन्तन, असारता का चिन्तन, संसार, भोगों से विरक्ति संबंधी बातों का चिंतन आदि। अब यहाँ आँखें बन्द करके अभ्यास करो।

अब फिर जिनवाणी की बातों को उठाइए, हमने पढ़ा था कि –

"होता जगत स्वयं परिणाम"

हमने शास्त्रों में पढ़ा कि भेदविज्ञान की भावना निरंतर भानी चाहिए। हमने समयसार के 130 नंबर के कलश में यह बात पढ़ी कि कब करें भेद विज्ञान –

भावयेद्भेद विज्ञान मिदमच्छिन्न धारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते।।

यहाँ कहा अविच्छिन धारापूर्वक भेदविज्ञान करो, इस अविच्छिन्न धारा का मतलब क्या है? प्रतिसमय भेदविज्ञान करो; यह जगत एक खुली पाठशाला है वहाँ से करो। आपने अर्थ सम्यक्त्व सुना होगा, वह क्या है? वह है – वस्तुस्वरूप का विचार। यह देखो, वह देखो, सब कुछ देखो; क्योंकि हम देखने वाले ही तो हैं, ज्ञाता-दृष्टा रहने का अभ्यास कीजिए, हम ज्ञाता-दृष्टा हैं और ज्ञाता-दृष्टा का अभ्यास हमें निरंतर नियमित करना है, हर समय करना है। जब हम भोजन की थाली सामने लगाकर बैठे हों तब हमें अभ्यास करना है कि हमने कहा तो कुछ और बनाने के लिए था; लेकिन बनकर कुछ और आया। बनाना तो हम बहुत अच्छा चाहते थे; लेकिन मन मुताबिक नहीं बना। पण्डितजी बार-बार डोसे के लिए कहा करते थे। पण्डितजी आज खाना खाने के लिए आ रहे हैं तो चलो उनके लिए डोसा बनाते हैं और उसी दिन वह बिगड़ जाता है तो कहते हैं कि पता नहीं हमेशा बहुत अच्छा बनता था और आज ही क्यों बिगड़ गया। डोसा बिगड़ जाए तो ठीक है; लेकिन डोसा बिगड़ जाने पर मुँह नहीं बिगड़ना चाहिए।

ये भेदविज्ञान के अभ्यास के ही चरण हैं। जो काम बिगड़ गया मतलब बिगड़ गया; लेकिन मूड नहीं बिगड़ना चाहिए। मनःस्थिति नहीं बिगड़नी चाहिए। निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। तत्त्वविचार और कहाँ नहीं हो सकता है? तत्त्वविचार का यदि हम प्रयत्न करें, तो हम प्रत्येक समय तत्त्वविचार कर सकते हैं।

क्या यहाँ बैठे-बैठे तत्त्वविचार नहीं हो सकता? कभी हमारे लाइव प्रवचन चलते हुए प्रवचन के बीच में जब कभी गोला घूमने लग जाता है और इंटरनेट अटक जाता है तो फिर हम जब वापस चालू करते हैं तो यही तो कहते हैं कि प्रैक्टिकल करने का समय था। बीच-बीच में हमें ये मोबाइल इंटरनेट भी तो प्रैक्टिकल करने की प्रेरणा देते हैं कि भैया थ्योरी कहते-कहते बहुत देर हो गई अब जरा थोड़ा-सा प्रैक्टिकल करो। देखिए ज्ञानियों के जीवन में प्रैक्टिकल के काल में थोड़ी-सी असहजता का भाव आता है। कदाचित् ऐसा भाव आएगा लेकिन डरना नहीं है, जब हमारे ऊपर संकट आते हैं तब हमें डरना नहीं है, बिल्कुल भी घबराना नहीं है। जैसे ही वस्तुस्वरूप का विचार करेंगे वैसे ही आपकी वह घबराहट तुरंत चली जाएगी। थोड़े समय के लिए आएगी, आकुलता होगी, बिल्कुल होगी, क्योंकि हम भगवान नहीं हैं; लेकिन अब व्याकुलता चलते-चलते दो-तीन मिनट में जैसे ही तत्त्व का विचार आएगा। कोई बात नहीं, यह होना ही था, भगवान के ज्ञान में यही झलक रहा था, यही तो करना है और क्या करना है? यदि अपने विकल्प के ऊपर तत्त्वविचार के माध्यम से अल्पकाल में ही विजय प्राप्त कर लें, तो हम यह कहेंगे कि आपने बहुत हद तक सफलता प्राप्त कर ली है। मोक्षमार्ग पर कदम रखने की भाव-भूमि बनाने के लिए यह आवश्यक है।

कभी-कभी लोग कहते हैं कि सुनते हुए बहुत साल हो गए, पढ़ते हुए बहुत साल हो गए, इतने सालों से अंदर में कुछ नहीं हुआ; आखिर क्या नहीं हुआ। अरे! यह बहुत बड़ा बदलाव है, यह बहुत बड़ा परिवर्तन

है कि कषाय लंबी नहीं होती है। बहुत बड़ा परिवर्तन है कि आप उसे खींचते नहीं हैं। यह बहुत बड़ा परिवर्तन है कि आपकी आकुलता तत्त्वविचार की हवा लगने पर धूमिल हो जाती है। तीसरे नंबर की कषाय में, क्रोध के संबंध में दिया गया उदाहरण बालू/मिट्टी पर खींची गई धूल की रेखा के समान है। कितनी देर तक रहेगी? हवा चली और खत्म। अभी जो यह गुस्सा था, जो कषाय थी, जो विकार था, यह तो प्रतिकूलता में खिन्नता का परिणाम था, कितनी देर तक रहेगा? जैसे ही तत्त्वविचार की आँधी चलती है, हवा चलती है, एक लहर आती है और तुरन्त हमारी आकुलता को उखाड़ कर ले जाती है। यह है गजब की बात और हमें यही करना है, जो इसके अंदर जितना जल्दी सफल हो जाएगा समझ लीजिए उसकी दिल्ली उतनी ही नजदीक है।

थोड़ा-सा और आगे बढ़ने का प्रयास कीजिए। चिंतन को और आगे ले जाने का प्रयास कीजिए। अभी दो घड़ी निज नाथ के नजदीक आने के लिए बैठ गए हैं, बैठने के बाद फिर यह निरंतर चलते रहना चाहिए। वस्तुस्वरूप के विचार में हमें छह द्रव्य दिखाई दे रहे हैं; क्योंकि इस दुनिया में द्रव्यों की छह जातियाँ ही हैं। एक जीव जाति की वस्तु है, एक पुद्गल जाति की वस्तु है, एक धर्म जाति की वस्तु है, एक अधर्म जाति की वस्तु है, एक आकाश जाति की वस्तु है और एक काल जाति की वस्तु है। इन सभी वस्तुओं के संदर्भ में हमें विचार चल रहे हैं। अब आँखें बंद करके बैठे हैं अब दुनिया नहीं दिख रही है, अब हमें वस्तुएँ दिख रही हैं, छह द्रव्य दिख रहे हैं तो फिर उन द्रव्यों का विचार करते रहिए।

''**होता स्वयं जगत परिणाम मैं जग का करता क्या काम**''

''**सभी द्रव्य स्वतंत्र जगत में कोई न किसी का काम करे**''

फिर आप यह विचार चलने दीजिए। कोई किसी का काम नहीं कर रहा है, कौन किसका काम कर रहा है एक-एक पर्याय स्वतंत्र है। अपने उदय के साथ में पर्याय की स्वाधीनता के ऊपर आ जाइए, फिर उदय से हटकर अपने विकार के पास और फिर उसके और नजदीक आकर

अपनी पर्याय की स्वाधीनता के पास आ जाइए और वहाँ से भी भेदविज्ञान करते हुए अपने अनंत गुणों के पिण्ड भगवान आत्मा के पास चले जाइए। बस इसी स्टेप से चलना है। बहुत दूर से शुरू किया था, दुनिया से शुरू किया था। अमेरिका में क्या चल रहा है, यूरोप में क्या चल रहा है, चाइना में क्या हो रहा है, जापान में क्या चल रहा है, हिंदुस्तान में क्या चल रहा है, कौन-सी जगह पर क्या हो रहा है और नजदीक आए तो प्रकृति पर, फिर और नजदीक आए तो व्यापार पर, फिर और नजदीक आए तो परिवार पर, फिर और नजदीक आए तो शरीर पर, और वहाँ से और नजदीक आए तो कर्मों पर आ गए।

यदि कोई व्यक्ति ऐसा समझ लेवे कि कर्मोदय से यह सब हो रहा है तो ऐसा भी नहीं है; यह मौसम बदल रहा है तो क्या कर्म के उदय से बदल रहा है? कौन से कर्म के उदय से मौसम बदलता है। आसमान में बादल गरजते हैं, बिजलियाँ चमकती हैं, तो ये सब किस कर्म के उदय से हो रहा है? इसमें कोई कर्म का उदय नहीं होता। इसमें कर्म के उदय वाली बात ही नहीं है; क्योंकि इन कार्यों में कर्म का उदय होता ही नहीं है। बिजलियों के चमकने में कौन-से कर्म का उदय? बादलों के गरजने में कौन-से कर्म का उदय? इंद्रधनुष बन गया तो कौन से कर्म का उदय? कर्म के उदय से तो मात्र संयोग मिलते हैं, उसमें भी हमें भेदविज्ञान करना है। यह जो कर्म था इसमें द्रव्य कर्म अलग और यह जो शरीर आदि रूप दिखाई दे रहे हैं ये नोकर्म हैं, ये अलग हैं। द्रव्य कर्म और शरीररूप दिखने वाले नोकर्म एक-दूसरे के कर्त्ता-धर्त्ता नहीं हैं। ये विचार चलते रहना चाहिए। कर्म मेरे बाँधने से बँधते नहीं हैं और छोड़ने से छूटते नहीं हैं। मैं चाहता तो हूँ अविपाक निर्जरा हो और हो रही है सविपाक निर्जरा, मैं चाहता हूँ गुणश्रेणी निर्जरा; परन्तु वह हो नहीं रही है। मैं चाहता तो हूँ कर्म घट जाएँ परन्तु वे बढ़ रहे हैं, मैं चाहता हूँ कि इन कर्मों को बदल दूँ; लेकिन ये सब अपने कंट्रोल से बाहर हैं।

कर्मों का परिणमन भी स्वतंत्र है, इसलिए कर्मों को कर्मों के हाल पर छोड़ दो। अब आ जाओ अपने विकल्पों पर, इससे भी एक स्टेप और अंदर राग पर आ जाइए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि न चाहने पर भी परिणाम कहीं के कहीं दौड़ जाते हैं। मेरा तो मन ऐसा था कि मैं वस्तु-स्वरूप के विचार में लगा रहूँ, मेरा तो मन ऐसा था कि उपयोग को एकाग्र करके भेदविज्ञान करता रहूँ; लेकिन करने से थोड़ी न होता है। इसका मतलब है कि परिणाम भी हमारे कंट्रोल में नहीं हैं; परन्तु परिणाम तो मेरे हैं, तब भी मेरे कंट्रोल में क्यों नहीं हैं?

कोई बात नहीं पर्याय की स्वाधीनता का विचार करो, पर्यायों की स्वतंत्रता का विचार करो, प्रभु के ज्ञान में वह पर्याय स्वतंत्र झलक रही है - इस बात का विचार करो और जिस समय ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञेय बनना होता है उस समय वही बनता है - इसप्रकार विचार करते हुए अपने उपयोग में, अपने चिंतन में चल रही इन सारी बातों का विचार और चिंतन करते-करते माथे से अनुभूति के विकल्प को भी उतार कर साइड में रख दो।

सम्यग्दर्शन नहीं हो रहा है कैसे करूँ? क्या करूँ? अभी भी नहीं हुआ? अभी भी आत्मा नहीं दिखा? अब आत्मा कैसे दिखेगा? अब आत्मा दिख जाए, अब तो दिख जाए, अब क्या करूँ? अरे भाई! यहाँ तो कह रहे हैं कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का जो विकल्प है उस विकल्प को भी उठाकर बगल में रख दो।

निहालभाई सोगानीजी का वाक्य है कि - **चैतन्य का चिंतन भी चेतन की अनुभूति को जलाता है,** उसमें विघ्न उत्पन्न करता है, बाधा उत्पन्न करता है। चैतन्य के चिंतन के काल में भी चेतन की अनुभूति नहीं होती; क्योंकि चैतन्य की अनुभूति तो चैतन्य के विकल्पों को भी तोड़कर होती है। निर्विकल्प अनुभूति के लिए वे विकल्प भी टूटने चाहिए। निर्विकल्प अनुभूति के लिए इस ज्ञान की पर्याय को स्वतंत्र छोड़ दो।

टोडरमलजी साहब का वाक्य है कि – **हे जीव! बुद्धिपूर्वक तेरा कार्य तो तत्त्व विचार में अपने उपयोग को तद्रूप होकर लगाना ही है।**

तत्त्वविचार करना ही इस जीव का कर्त्तव्य है। शेष उपवास, व्रत, तप आदि तो सहज ही होते रहेंगे।

तत्त्वविचार में उपयोग को तद्रूप करके लगाना वह हमारे हाथ में है या नहीं? वह कैसे करें? एक-एक समय की पर्याय की स्वाधीनता को देखें तथा पर्याय की स्वाधीनता को देखते हुए यह समझें कि वह मेरे कंट्रोल में नहीं है और जो कंट्रोल में नहीं, वह मेरा नहीं। जहाँ मेरी चलती नहीं वह मेरा नहीं, तो क्या मेरी कहीं नहीं चलती, हम तो लगातार चलाते हुए आ रहे थे; परन्तु वास्तव में कहीं भी चल नहीं रही थी और अब उपयोग को स्वभाव सन्मुख करने के प्रयत्न में भी एक लेवल पर आकर मेरी चलना बंद हो गई।

कोई बात नहीं, चिंता मत करो और विकल्पों को थोड़ा अंदर ले जाओ। इन प्रयासों को छोड़ो और पर्याय मात्र से पार, अंदर में जो अनंतगुण शक्तिसम्पन्न अखंड पिंड स्वयं प्रभु परमात्मा बैठा है, उसे देखना है। अंदर में जो मैं ज्ञान का घनपिण्ड, शक्तियों का संग्रहालय, आनंद का रसकंद, मैं स्वयं प्रभु हूँ, मैं स्वयं परमात्मा हूँ, मुझमें अनंत गुण हैं, मुझमें अनंत शक्तियाँ हैं, इसका बार-बार धाराप्रवाह रूप से घोलन (चिंतवन) चलने दो। यह 48 मिनट का होमवर्क है। 48 मिनट तक अपनी शक्तियों के बारे में विचार करो। अपनी संपदा के बारे में विचार करो, अपनी सामर्थ्य के बारे में विचार करो, अपनी पॉवर के बारे में विचार करो, दो घड़ी नजदीक आने का मतलब क्या है? कौन आएगा नजदीक? कहीं बाहर से थोड़ी न आना है। कोई सामने वाला व्यक्ति थोड़ी न है। स्वरूप सम्पदा तो अपनी ही है; लेकिन उसकी खबर नहीं है, उसकी खबर हो जाना, इसका नाम है नजदीक आना। नजदीक आने का मतलब क्या हुआ। देखो दादाजी के जमाने से धन अपने घर में गड़ा हुआ था। वह किसकी संपत्ति है? अपनी है न। दादाजी का

स्वर्गवास हो गया। अपन इकलौते बेटे के इकलौते बेटे हैं तो सारी संपत्ति अपनी ही तो है; लेकिन फटेहाल घूम रहे थे, भिखारी बने घूम रहे थे। भोजन की व्यवस्था नहीं थी, शाम की रोटी का ठिकाना नहीं था। एक दिन किसी ज्योतिषी ने आकर हमको उस धन के बारे में बता दिया। तो मैं आपसे पूछता हूँ कि वह धन हमारा ही तो था। ज्योतिषी ने क्या किया मात्र बताया ही तो है। यही काम तो हमारे वीतरागी संतों ने किया है और पूर्ववर्ती विद्वानों ने भी यही काम किया। वे ग्रन्थ लिखकर हमें यह रास्ता बता गए। दुनिया में अन्य धर्म/दर्शनों के भगवान हैं, वे देते हैं – ऐसा कहा जाता है। हमारे भगवान देते नहीं हैं बता देते हैं। उनके बारे में क्या कहा जाता है कि वे देते हैं और हमारे भगवान कैसे हैं, वे बता देते हैं कि तू अंदर से मालामाल है। गुरुदेवश्री सुबह उठते ही सबसे पहले 47 शक्तियों का पाठ करते थे, शक्तियों का पाठ कीजिए।

48–48 मिनट तक बैठ करके 47 शक्तियों का जाप कीजिए। 47 शक्तियों का चिंतन कीजिए, अपनी निधि को संभालिए, अपने वैभव को संभालिए, अंदर में आनंद की लहर दौड़ने लगेगी – जैसे तिजोरी में रखे हुए धन को बार–बार, महीने–पन्द्रह दिन में निकाल कर देखता है और देख–देखकर खुश होता है। ऐसे ही यहाँ कह रहे हैं कि अपने स्वरूप को चिन्तन करते हुए खुश होता है। बार–बार आनंद में डुबकी लगाता है। चिंतन की धारा में शक्तियाँ चलने दीजिए, ये शक्तियाँ धर्म संपदा हमारे चिंतन की धारा में चलती हैं। रोजाना यदि अभ्यास किया जाता है तो फिर चलती ही रहती हैं।

बनारसीदासजी कहते हैं –

वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम॥

जिस विधि से वस्तु के विचार की बात कही है। वह विचार कहाँ चल रहा था? तो वह सारा विचार मन में चल रहा था। चलते–चलते क्या हो जाएगा? धीरे–धीरे एक क्षण, एक पल ऐसा आएगा कि मन

पावे विश्राम अर्थात् मन उस वस्तुस्वरूप के विचार में रम जाएगा। फिर क्या होगा? अरे फिर तो क्या कहना –

'रस स्वादत सुख ऊपजे अनुभव ताको नाम'

अर्थात् अंदर में आनंद का रसास्वादन होगा। आनंद के झरने झरेंगे। यहाँ आप अभ्यास कीजिए। इस विधि से कुछ-न-कुछ हासिल जरूर होगा, विधि तो यही है, प्रक्रिया तो यही है, इसके अलावा कोई और रास्ता नहीं है।

जीवन में करने योग्य एकमात्र कार्य; जिसे हमारे यहाँ जिनागम में भेदविज्ञान कहकर पुकारा गया है, वह प्रत्येक आत्मार्थी का प्रयोजन भी है, कर्तव्य भी है, लक्ष्य भी है और प्राप्त करने योग्य मंजिल भी है। हर व्यक्ति यही चाहता है कि जैसे भी हो भेदविज्ञान हो जावे। मैं उनकी बात नहीं कर रहा हूँ जो भेदविज्ञान को समझते ही नहीं हैं, जो लोग नए हैं, जिन्हें भेदविज्ञान की खबर ही नहीं है, मैं उनके लिए मात्र इतना कहना चाहूँगा कि भेदविज्ञान अर्थात् सुख की उत्पत्ति। भेदविज्ञान के बिना आनंद नहीं है, भेदविज्ञान के बिना शांति नहीं है, भेदविज्ञान के बिना सुख नहीं है; यदि यह जीव सुख प्राप्त करना चाहता है, तो उसका एकमात्र उपाय भेदविज्ञान ही है। दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। इसे ही दूसरे शब्दों में तत्त्वविचार कहते हैं, वस्तुस्वरूप का विचार कहते हैं।

''वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से सब दु:ख संकट सहा करें''

तो वहाँ सर्वप्रथम वस्तु को पहचानो, फिर वस्तु के स्वरूप को पहचानो, फिर वस्तु-स्वरूप को पहिचान कर उसके निर्णय करने का प्रयास करो कि मैं कौन हूँ? जब तक इस जीव को यह निर्णय नहीं होता कि मैं कौन हूँ? तब तक सुखी कैसे होगा? सारा झगड़ा तो इसी बात का है न! सुखी होना है लेकिन किसे सुखी होना है, यह नहीं जानता। मुझे सुखी होना है? अर्थात् मैं कौन हूँ? जो आईने के सामने खड़ा होकर दिखने वाला है, क्या यह मैं हूँ? मोटा-पतला, काला-गोरा, लंबा-चौड़ा, 60 किलो वजन वाला, 70 किलो वजन वाला, क्या यह

मैं हूँ? और यदि ये सब मैं नहीं हूँ तो मेरे सारे के सारे प्रयास इसी के लिए चल रहे हैं। आप ही बताइए कि मेरे सारे प्रयास किसके लिए चल रहे हैं? यह शरीर ठीक रहे, घर में शांति बनी रहे, मेरे पूरे प्रयास इसी के लिए तो चल रहे हैं। मैं स्वस्थ रहूँ कोई तकलीफ न हो जाए, बीमारी न हो जाए, हाथ-पाँव बराबर चलते रहें, शरीर बराबर काम करता रहे, बच्चे मेरी आज्ञा में चलें, नौकर-चाकर की सुविधा हो, अच्छा घर हो, अच्छी गाड़ी हो, अच्छा बंगला हो, हमारे सारे प्रयास इसी के लिए तो चल रहे हैं। यहाँ भेदविज्ञान के अभ्यास की चर्चा करने में हम यह निर्णय करेंगे कि आखिर मैं कौन हूँ? आप जानते हैं भेदविज्ञान क्या चीज है?

भेद + विज्ञान = भेदविज्ञान। भेद किसे कहते हैं? विज्ञान किसे कहते हैं? विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान और भेद अर्थात् न्यारे-न्यारेपने की अनुभूति। यह अलग है और मैं अलग हूँ, इस तरह के निर्णय का नाम भेदविज्ञान है। वास्तव में भेदविज्ञान करना तो हम सब जानते हैं। हमारी पूरी जिंदगी बचपन से लेकर आज तक भेदविज्ञान करने में ही निकली है; फिर भी जब भी मैं भेदविज्ञान और तत्त्वनिर्णय की बात करता हूँ, तो बहुत सारे लोग यह कहते हैं कि पण्डितजी बहुत कठिन काम होगा। आसान नहीं होगा, यदि आसान ही होता तो अब तक हमें भेदविज्ञान हो जाता।

फिर भी मैं बताना चाहता हूँ कि भेदविज्ञान अर्थात् वही काम जो हम बचपन से आज तक करते आ रहे हैं। भेदविज्ञान तो करते आ रहे हैं लेकिन स्व-पर भेदविज्ञान नहीं कर रहे हैं। पर को पर और निज को निज जान - इसका भेदविज्ञान नहीं कर रहे हैं; लेकिन यह कुर्सी हमारी है, इस कुर्सी पर मैं बैठता हूँ, यह सीट मेरी है और यह मेरी नहीं है, ये हमारे हैं और ये हमारे नहीं हैं, ये मोबाइल मेरा है, इन चीजों में भेदविज्ञान करते हैं।

कभी-कभी आप अपने हाथ में फोन उठाते हैं और तुरंत यह मेरा नहीं है, ऐसा जान लेते हैं। आपको अपने जैसी चप्पल दिखाई दे रही

थी, आपने पैर में डाली और पैर में डालते ही पता चल गया कि यह मेरी नहीं है। आँखें तो धोखा खा जाएँ; लेकिन पैर कभी धोखा नहीं खाते। चप्पल में पैर डालते ही पता लग जाता है कि यह मेरी नहीं है। धोबी के यहाँ से कपड़े आते हैं और आप 'ये मेरे नहीं हैं', ऐसा मानकर वापस लौटा देते हैं। यह घर मेरा है यह घर मेरा नहीं है, ये कपड़े मेरे हैं ये कपड़े मेरे नहीं हैं, यह धन मेरा है यह धन मेरा नहीं है, यह गाड़ी मेरी है, यह गाड़ी मेरी नहीं है, कभी ऐसा होता है कि आप पार्किंग में जाकर गाड़ी को खोलने की कोशिश करते हैं, दो-चार मिनट तक खोलने की कोशिश करते हैं और फिर आप थोड़ा आगे-पीछे होते हैं तो देखते हैं कि यह मेरी गाड़ी नहीं है। मेरी गाड़ी तो दो गाड़ी आगे खड़ी हुई है। यहाँ हमें जो तकलीफ हुई वह अपनी वस्तु को नहीं पहिचानने के कारण से हुई है। दुनिया में सब जगह भेदविज्ञान करता है लेकिन यह भेदविज्ञान अपने और पराए में करना है, मैं कौन हूँ और पर कौन है? इसका करना है। सबसे पहला चरण भेदविज्ञान का यही है कि वह सही दिशा में हो। मैं आपको बाहर की तरफ नहीं ले जाना चाहता हूँ वरना बाहर से भीतर की तरफ लाने का प्रयास कर रहा हूँ।

यहाँ इस बात से चर्चा प्रारंभ करनी है कि 'मैं कौन हूँ?' इस बात के निर्णयपूर्वक गाड़ी आगे चलेगी। इस बात की जब स्वीकृति होती है कि 'मैं कौन हूँ और मेरा क्या स्वरूप है?' तो फिर अपने आप ही भेदविज्ञान हो जाता है, फिर तत्त्वविचार अपने आप ही हो जाता है। तत्त्वविचार किया नहीं जाता है, भेदविज्ञान किया नहीं जाता; हो जाता है। जब पता लगता है मैं यह हूँ, यह मेरा है, तो फिर यह बिना सिखाए ही उसमें अपनापन करना सीख जाता है। जब कोई कन्या शादी के बाद ससुराल जाती है, तो उसे सिखाया नहीं जाता कि ऐसे अपनापन किया जाता है। अब यह तुम्हारा ही घर है, इसे अपना कैसे बनाओगे; यह सिखाया नहीं जाता है। जहाँ अपना मानते हैं वहाँ अपनापन स्वयमेव हो जाता है; सिखाना नहीं पड़ता। सारा खेल मान्यता का ही तो है। शादी

किसका नाम है? बैंड-बाजे बजेंगे, ढोल-नगाड़े बजेंगे, मेहमान आएँगे, लोग आएँगे, टेंट बँधेगा, अच्छी जगह बुक होगी, इसका नाम शादी है क्या? कोरोना ने सब दिखा दिया कि 15-20 लोगों में भी शादी हो जाती है। उसमें बैंड-बाजे वाले भी शामिल हो जाते हैं इसलिए बिना बैंड-बाजे वालों के भी शादी करनी पड़ती है।

इससे यह बात तो समझ में आ गई कि असली शादी तो अपनेपन की मान्यता का नाम है। बाकी तो सब प्रदर्शन मात्र है। जगत की दृष्टि से, प्रदर्शन की दृष्टि से भी बात करें तो माँग भरने मात्र का नाम शादी है। इतना हो गया, बस शादी हो गई और ये सब काम बाद में होंगे। वास्तव में तो 'यह मेरा है और मैं इसका हूँ।' यह जो मान्यता दो व्यक्तियों के हृदय में हुई उसी का नाम शादी है। शादी के लिए मात्र दो व्यक्ति अनिवार्य हैं, जिनके बिना शादी नहीं हो सकती - पहला दूल्हा और दूसरी दुल्हन। इनके बिना शादी नहीं हो सकती, बाकी तो फिर प्रदर्शन मात्र है। न ही लड़की के पिता जरूरी हैं; क्योंकि जिस लड़की के पिता का स्वर्गवास हो गया हो क्या उसकी शादी नहीं होगी? जिसकी माँ का स्वर्गवास हो गया हो क्या उसकी शादी नहीं होगी? सब काम होंगे, किसी के न होने से कोई काम नहीं रुकता।

हम तो यह कहना चाह रहे हैं कि यह निर्णय करो कि क्या चीज जरूरी है। निर्णय करो कि मैं कौन हूँ? निर्णय करो कि मेरा स्वरूप क्या है? अपने आपको आत्मा स्वीकार करना है, इसी का नाम भेदविज्ञान है। यही जीव का प्रथम कर्तव्य है। जब अपने आपको आत्मा स्वीकार करता है तो फिर यह शरीर मैं नहीं हूँ; यह भेदविज्ञान कराया नहीं जाता है, यह भेदविज्ञान हो जाता है। बस आप यह स्वीकार तो करो कि मैं आत्मा हूँ। क्षत्रचूड़ामणि के 17वें व 18वें श्लोक में अपने आपको आत्मा स्वीकार करना ही परम कर्तव्य है, यह कहा गया है। प्रथम में प्रथम कर्तव्य तो भेदविज्ञान करना है। अपने आपको आत्मा स्वीकार किया इसका मतलब यह हो गया कि मैं शरीर नहीं हूँ, मैं संयोग रूप में

नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, आत्मा के गुण-धर्म ही मात्र मेरे हैं; बाकी सब मेरे नहीं हैं। जो मेरा नहीं है उसके जाने से मुझे क्या तकलीफ, जब यह समझ लिया कि यह धन मेरा नहीं है तो दो करोड़ रुपयों का नुकसान हो या बीस करोड़ रुपयों का – इससे क्या फर्क पड़ता है। जब यह मेरा है ही नहीं, तो सारी तकलीफ ही चली जाती है। जब शरीर मेरा है ही नहीं, तो सर पर दो बाल रहें या दो हजार या दो लाख उससे क्या फर्क पड़ता है।

''निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान''

यह पहले में पहले करने योग्य काम है। देखिए आप अपने परिवार को अपने आपको व्यापारी मानते हैं, तो आपकी सारी प्रवृत्तियाँ व्यापारी जैसी होती हैं। आप यदि अपने आपको स्त्री मानते हैं, तो सुबह उठते ही पहले हाथ में झाडू आ जाती है, उठते ही चाय बनाने किचन में चले जाते हैं। यदि अपने आपको पुरुष मानते हैं तो उठते ही सबसे पहले अपने-अपने हिसाब से कोई चाय पीता है, कोई मोबाइल उठाता है, कोई न्यूज़पेपर पढ़ता है। अपने आपको जैसा आप स्वीकार करेंगे, वैसी ही प्रवृत्ति आपकी हुए बिना नहीं रहेगी। आप यदि अपने आपको आत्मार्थी स्वीकार करते हैं तो आपकी प्रवृत्तियाँ वैसी होती हैं कि चलो पूजन का समय हो गया है, मंदिर चलते हैं। चलो स्वाध्याय का समय हो गया है तो स्वाध्याय करेंगे। मैं तो आत्मार्थी हूँ। आपने स्वयं को आत्मार्थी स्वीकार किया तो आप स्वाध्याय के लिए आकर बैठ गए। ये सारी बातें आप जैसा मानेंगे, वैसी अपने आप हो जायेंगी। अपने आप को कर्मचारी मानेंगे तो वैसी प्रवृत्ति होगी। आप यदि अपने आपको मैनेजर मानेंगे तो वैसी प्रवृत्ति होगी। आप अपने को मालिक मानेंगे, तो आपका व्यवहार मालिक जैसा होगा। आप जैसा स्वीकार करेंगे, वैसा ही काम होने लग जाएगा। अभी यहाँ यह स्वीकार करना है कि मैं आत्मा हूँ, मैं चैतन्य तत्त्व हूँ। मैं सदा जड़ से भिन्न ही रहता हूँ, शुभ और अशुभ तो दूर रहें, मैं तो पर्याय से भी भिन्न रहता हूँ।

अब हमें इस बात का निर्णय करना है कि तत्त्वविचार किसका नाम है। यह विचार क्या चीज है और विचार में क्या चलना चाहिए ? तत्त्व तो सात होते हैं– जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – इन सातों तत्त्वों में मैं जीव हूँ इसका मतलब मैं अजीव नहीं हूँ। मैं जीव हूँ इसका मतलब मैं आस्रव नहीं हूँ, मैं बंध नहीं हूँ, मैं संवर नहीं हूँ, मैं निर्जरा नहीं हूँ, मैं मोक्ष नहीं हूँ, अर्थात् राग भी मेरे से भिन्न तत्त्व है। मैं यह निर्णय करने का प्रयास कर रहा हूँ कि यह जो गुस्सा आ रहा है, यह गुस्सा मैं नहीं हूँ, यह मुझसे भिन्न है। क्रोध मेरा ही तो है, ये कर्म तो मेरे ही हैं, यह निर्मल पर्याय मेरी ही तो है, मुझे ही प्रकट करनी है। तत्त्वविचार वाला कहता है कि ये सब तो न्यारे–न्यारे हैं। मैं जीव और ये बाकी जितने हैं ये मैं तो हूँ ही नहीं और ये मेरे भी नहीं हैं। जब मैं अजीव ही नहीं हूँ तो बाकी सब कैसे हो सकता हूँ। आँखें बंद करके शांति से विचार करो, आँखें बंद करके देखो मैं कौन हूँ। यह भेदविज्ञान तो साबुन है।

बनारसीदासजी कहते हैं –

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अंतर आत्मा, धोबे निजगुण चीर।।

अपने आत्मारूपी कपड़े को समता रस रूपी निर्मल नीर के माध्यम से और भेदविज्ञानरूपी साबुन के माध्यम से धोना है।

अकेले साबुन से काम नहीं चलेगा, पानी भी होना चाहिए। कौनसा साबुन और कौनसा पानी ? और किसे निकालना है ? भेदविज्ञान रूपी साबुन लगाकर समतारसरूपी निर्मल जल से जब अपने चेतनरूपी निर्मल वस्त्रों को धोया जाता है, तो फिर राग विकार आदि दुःख–कष्ट और परेशानियों रूपी जितनी भी गंदगी होती है, वह सब पृथक् हो जाती है। यह धारा बहती रहनी चाहिए। भेदविज्ञान की धारा निरंतर बहनी चाहिए। जब आप बोल रहे हों तब आप यह विचार कीजिए कि मैं बोलने वाला नहीं हूँ, मैं तो जानने वाला हूँ।

जब मैं घमण्ड में ऐसा बोलता हूँ कि मैं सब समझता हूँ और सब समझा दूँगा तो तुरन्त 2-4 मिनिट में ही मेरे दिमाग में भेदविज्ञान का साबुन लगता है, समतारसरूपी निर्मल नीर बहता है और परिणामों में तुरन्त यह बात आती है कि भैया नक्की तो कर कौन बोलने वाला है और कौन समझाने वाला है? मैं समझता भी हूँ और मैं समझा भी सकता हूँ, यह आपकी गलतफहमी है। मैं समझता हूँ यह तो सही बात है; क्योंकि समझना ज्ञान का काम है; लेकिन मैं समझा सकता हूँ यह झूठी मान्यता है; क्योंकि समझाना भाषा वर्गणा का काम है, जो कि अचेतन है, पुद्‍गल है। समझना मेरा काम है समझना मेरी पर्याय है। मैं समझ सकता हूँ यह ज्ञान किसको हो रहा है। क्रोध मैं नहीं, क्रोध को करने वाला मैं नहीं। क्रोध आस्रव तत्त्व है और मैं जीव तत्त्व हूँ, क्रोध से भिन्न तत्त्व हूँ।

हमने इनसे जैसे ही भेदविज्ञान किया वैसे ही मैं इनका कर्ता-धर्ता नहीं यह भी नक्की हो जाना चाहिए। परिवार वाले समस्त छद्मस्थ ही हैं। हम कोई भगवान तो हैं नहीं। न हम भगवान हैं न आप भगवान हैं। हमारे आत्मार्थी लोगों में कोई भी तो भगवान नहीं है, इसलिए परिणाम तो प्रतिसमय बदलते रहते हैं; लेकिन अपने आपको संभालते रहना है, टटोलते रहना है। आँखें बंद कर भेदविज्ञान का अभ्यास करते रहना है। इस भेदविज्ञान का अभ्यास निरंतर रहना चाहिए। जब बच्चे आपको पलट कर सामने से जवाब दे दें तब भेदविज्ञान करना कि ये मेरे नहीं हैं और अब तो हमें भेदविज्ञान भी एक स्टेप आगे चलकर करना है। करना यह है कि बच्चे ने पलटकर सामने से जवाब दिया था। वह बच्चा और उस बच्चे की भाषा इन दोनों में भिन्न भिन्नपन अनुभवना है। बहू ने पलटकर सामने से जवाब दे दिया, सास ने हमारे को कुछ भी कह दिया, पड़ोसी ने हमें कुछ भी बोल दिया, पड़ोसी तो भिन्न है इस भेदविज्ञान की चर्चा तो हमने पूर्व में ही कर ली थी।

अब भेदविज्ञान को हमें इस लेवल तक ले जाना है कि जो पड़ोसी है, वह अन्य है और जो भाषा वर्गणा है, वह अन्य है और इन दोनों में

अत्यन्त अभाव है, जब आप ऐसा भेदविज्ञान करते हैं, जब शांत होकर भेदविज्ञान करते हैं तो फिर हमें ऐसा महसूस होता है। गलती किसकी? इनकी गलती से घर टूट गया, पार्टनरशिप छूट गई। इनकी गलती से घर में झगड़े हो रहे हैं। इनकी गलती की वजह से तलाक हो गया। अरे भैया! यहीं तो भेदविज्ञान की जरूरत है, भेदविज्ञान का जो अभ्यास करना है वह कब करना है? भेदविज्ञान का अभ्यास हर समय करना है। हर समय इस बात का निर्णय करना है कि आखिर इन सबमें मैं कौन हूँ? आखिर इन सबमें मैं कहाँ हूँ? इसका अभ्यास करना है। यह शरीर रहेगा और इसकी अवस्था जैसी चलती है वैसी ही चलती रहेगी; लेकिन इन अवस्थाओं के बीच में अंदर बैठा हुआ जो दैदीप्यमान चैतन्य तत्त्व है। वह कैसा है? वह मैं हूँ। उसे देखना है। बाबू जी की पंक्तियाँ हैं –

अरे! मिट्टी की काया बीच महकता चिन्मय भिन्न अतीव।
शुभाशुभ की जड़ता तो दूर पराया ज्ञान जहाँ परकीय॥

बाबू जी ने भेदविज्ञान को चरम सीमा पर ले जाकर पहुँचा दिया। यह मिट्टी की काया है और मिट्टी में मिल जाएगी। इसका कुछ विश्वास मत करना। इस मिट्टी की काया का, आपको बड़ा विश्वास है, बड़ा गर्व है। यहाँ आपको अभ्यास के लिए मैं कुछ पॉइंट दे रहा हूँ; आपको दो घड़ी में निज नाथ के नजदीक आने के लिए अभ्यास करना है, यहाँ पर निरंतर अभ्यास के बिंदुओं की चर्चा चल रही है कि यह जो शरीर है, इसका क्या भरोसा किया जाए?

भजन की पंक्ति में भी आता है –

पुद्गल का क्या विश्वासा, जैसे पानी बीच पतासा।
जैसे चमत्कार बिजली का और इंद्रधनुष आकाशा॥

बड़ा गजब का भजन है। सोचो जरा, इस पुद्गल का क्या भरोसा? कोई कहता है कि मैं इतना बड़ा हो गया, मेरी इतनी उम्र हो गई, मैं शरीर

को मेंटेन करके चलता हूँ, यह पुद्गल है, इसका क्या विश्वास कर रहा है। घर से बाहर निकलते समय तबीयत बिल्कुल ठीक थी, छींक आने लगी, कोरोना हो गया, क्या विश्वास करें इसका? डॉक्टर को दिखाने के लिए किसी और को लेकर गए थे और भर्ती हम खुद हो गए। ये क्या हुआ? क्या विश्वास करें? दूसरों की शवयात्रा में जाते-जाते अपनी ही शवयात्रा शुरू हो जाती है। क्या विश्वास किया जाए इस पुद्गल का?

पानी तेरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छुप जाएगा ज्यों तारा प्रभात।।

जैसे बिजली की चमक क्षण मात्र ही दिखाई देती है, वैसे ही देह की चमक भी क्षण मात्र में फीकी पड़ जाती है। जैसे बाहर इन्द्रधनुष दिखाई देने पर पिता पुत्र से कहता है कि अरे बेटा! दौड़ देख इन्द्रधनुष निकला है, वह दौड़ कर आया, तब तक तो इंद्रधनुष गायब हो गया – ऐसा है यह पुद्गल। ऐसी ही है इस देह की दशा, इसका क्या विश्वास करें? अब भेदविज्ञान, तत्त्वविचार करो; क्योंकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का अथवा आत्मकल्याण का यही एकमात्र उपाय है; दूसरा कोई उपाय नहीं है।

सारी तकलीफ इस वजह से है कि यह मैं हूँ और यह मेरा है। भेदविज्ञान होने से यह तकलीफ मिट जाती है। दाँत चले गए, मेरे हैं ही नहीं। बाल चले गए, मेरे हैं ही नहीं। इतना विचार करना कि यह पुद्गल की अवस्थाएँ हैं, जैसी हो रही हैं वैसी होने दो। यह मोह के कारण दु:खी है, पर को अपना मानने के कारण दु:खी है। पर से अत्यंत भिन्न निराला मिट्टी की काया के बीच रहता हुआ भी मिट्टी में तन्मय नहीं हुआ। देह के बीच रहता हुआ भी देह से भिन्न है। पर के बीच रहता हुआ भी पर से अस्पर्शित है। सोना किट्ट-कालिमा के बीच में रहता हुआ भी किट्ट-कालिमा से भिन्न रहता है। मैं तो कहता हूँ कि भोजन करते समय सब्जी से भेदविज्ञान करो। जो स्वाद आ रहा है उससे भेदविज्ञान करो। शुभ-अशुभ के जो परिणाम हैं, वे पर हैं, पर के अवलंबन से उत्पन्न होने वाले भाव हैं।

डाइनिंग टेबल पर बैठे हो ''रसगुल्ले का स्वाद आ रहा है। रसगुल्ला मेरा नहीं है, रसगुल्ला तो जड़ अजीव तत्त्व है। रसगुल्ले के प्रति होने वाला राग आस्रव तत्त्व है।'' ऐसे भोजन की थाली पर बैठकर भेदविज्ञान करना है; ऐसे भेदविज्ञान की धारा तो निरंतर बहती रहनी चाहिए। भोजन की थाली पर बैठकर भी भेदविज्ञान करेंगे, तो फिर थाली में कभी नमक कम आ जाए या ज्यादा आ जाए अथवा सब्जी मन के अनुसार बने या न बने, शांति का वेदन होगा। विकल्पात्मक भूमिका में चलने वाले भेदविज्ञान से ही जब शांति का वेदन होता है तो वास्तविक सम्यग्दर्शन होने पर अपूर्व ही शान्ति का वेदन होगा। रसगुल्ले का जो ज्ञान है, वह तो पराया ज्ञान है। न्यूज़पेपर का जो ज्ञान है वह ज्ञान भी पराया ज्ञान है – यह विचार कीजिए, यह धारा बहती रहनी चाहिए। ऐसा भेदविज्ञान में चलता है तो आनंद की धारा बढ़ने लगती है।

अभी तक जो राग धारा बहती थी वह रागधारा कर्मधारा बन जाती है, अब भेदविज्ञान से कर्मधारा बदल कर ज्ञानधारा में बदल जाती है, विभाव की धारा भेदविज्ञान में बदल जाती है। अपने को आत्मानुभव करना है; यह अत्यन्त अद्भुत वस्तु है और सात तत्त्वों में जब अपने को जीव तत्त्व स्वीकार कर लिया, इसके माध्यम से भेदविज्ञान की जो धारा बह रही है, वह कुछ अपूर्वानंद उपलब्ध कराने वाली होती है। सारा खेल चिंतन का है और क्या करना है चिंतन की धारा ही तो बदलनी है। आँखें बंद करके बैठा ही नहीं है। आँखें तो तब बंद होती हैं जब थक जाता है, परेशान हो जाता है। मोबाइल में तब तक माथा लगाए रहता है जब तक कि नींद न आ जाए। घरों में टी.वी. के चैनल घूमते रहते हैं, आजकल तो टाइमर लगा देते हैं, बंद भी कौन करेगा। देखते-देखते पता नहीं कब नींद आ जाए तो कम-से-कम टी.वी. अपने आप बंद हो जाएगी। अरे! देखना है उतना देखो और फिर बंद कर दो। बहुत महत्त्वपूर्ण बात है – सोते समय में जो अंतिम बात ज्ञान में चलती है; वह ज्ञान में चलने वाली धारा ही आपका संस्कार बन जाती है।

कुन्दकुन्द आचार्य की माता उनको सुलाने के लिए **'शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि'** इत्यादि लोरियाँ सुनाती थीं। सोते-सोते ये बातें जब कान में पड़ती हैं और इन शब्दों के साथ में जब नींद लग जाती है तो ये जो अंतिम शब्द हैं, जो कर्ण इंद्रिय के विषय बने थे, यह अंतिम चिंतन करने का विषय धारणा ज्ञान के माध्यम से संस्कार में परिवर्तित हो जाता है। अपने आपको संस्कारित करने की बात चल रही है। आत्मा संस्कारित होता है। सोते-सोते जब तक नींद नहीं आ रही हो भेदविज्ञान का अभ्यास करते रहें। जब तक नींद नहीं आ रही हो, आत्मचिंतन चलने दीजिए। इससे मस्तक-पटल पर अद्भुत वस्तु अंकित हो जाती है।

इस जीवन में काम नहीं हुआ तो डरो मत, यदि संस्कार बन जाएँगे तो सम्यग्दर्शन इस भव में न सही अगले भव में हो जाएगा; लेकिन होगा अवश्य। सम्यग्दर्शन तत्त्वचिंतन के माध्यम से होता है। चिंतन में निज नाथ के नजदीक आने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। जब आप ट्रेन में सफर कर रहे होते हैं और किसी स्टेशन पर ट्रेन रुकती है, आप नीचे उतरते हैं और वापस अंदर जाते हैं, तब आप देखते हैं एकदम अफरा-तफरी मची हुई है। आप क्या करते हैं? अपना बैग देखते हैं अपनी चीज को संभाल लेते हैं। अब आप सोचो - अपनी लाइफ से क्या-क्या चला गया? क्या जा रहा है? और हम किस-किसके जाने की चिंता में परेशान हैं? कौन-कौन चले गए? निरंतर यह धारा चलनी चाहिए कि मैं कौन हूँ? मैं जाननहार तत्त्व हूँ, अमूर्त प्रदेशों का पिण्ड हूँ, प्रसिद्ध ज्ञान आदि गुणों का धारी हूँ, अपने लक्षण में पकड़ में आने वाला तत्त्व हूँ। अनादि, अनंत, नित्य, स्वयं प्रभु, स्वयं परमात्मा, स्वयं चेतन तत्त्व, स्वयं देवाधिदेव, देवालय में विराजमान, जिन मंदिर वाला देव नहीं तन मंदिर वाला देव हूँ।

अभी तक तीर्थक्षेत्र में, दुनिया भर में परमात्मा को देखता रहा कि कहीं तो परमात्मा मिलेंगे और जब निज को देखा तो पाया कि परमात्मा

तो अंदर में विराजमान हैं। देह-देवालय में विराजमान हैं। अपने में परमात्म तत्त्व की अनुभूति होनी चाहिए। मैं परमात्मा हूँ, इस बात का निर्णय होना चाहिए।

परमात्मा तो कर्मों से रहित होते हैं मैं तो कर्मों से सहित हूँ, आचार्य योगीन्दुदेव कह रहे हैं - '**आत्मा परमात्मा, परमात्मा ही आत्मा**' यह जानकर हे योगीजन! भव्यजन!! श्रोताजन!!! कोई विकल्प नहीं करो, निर्विकल्प हो जाओ, भेदविज्ञान की धारा बहने दो। जब हमारे अंदर में यह धारा बहती है और अपनी पराकाष्ठा पर होती है तब निर्मल परिणाम प्रकट होते हैं, ये परिणाम निज को निज के साथ जोड़ते हैं, इन परिणामों के माध्यम से अपने आपमें अपनापन होता है। शरीर से भिन्न निज चेतन तत्त्व में अपनापन करने का प्रयास होना चाहिए। निर्विकल्प अनुभव हो, इसका मतलब पहले समझना और फिर समझाना है। अपने आपको संभालना है, अपने आपमें निश्चित तौर पर जब हम इस तरह से अभ्यास करते हैं, ज्ञान आदि लक्षणों से चैतन्य तत्त्व को पकड़ने का प्रयास करते हैं, तब अपने आप इस लेवल पर स्वयं ही विकल्प टूट जाते हैं और निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति हो जाती है। 'मैं अनुभव करूँ' यह भी नहीं करना है, मैं तो यह हूँ बस अब कुछ नहीं करना है। अपने में अपनापन करना है। बच्चा माँ को तलाशता है और जब माँ मिल जाती है तो माँ से लिपट जाता है। बस हो गया काम, जब मैं निज की खोज में निकला और निज की खोज करते हुए जब भेदविज्ञान, तत्त्वविचार की धारापूर्वक मैंने अपने को जाना, अपने को पहिचान लिया तो मैं मेरा हो गया और पर्याय अपने ध्रुव के साथ में तन्मय होकर अपने आप का अनुभव करने लगी तो पर्याय भी आनंद से सराबोर हो गई, आनंद से लबालब भर गई। आप भी भेदविज्ञान करोगे तो आपको भी आनंद प्रकट होगा। इसी अभ्यासपूर्वक निर्विकल्प दशा प्रकट होगी।

हम कैसे अभ्यास करें? क्या किया जाना चाहिये? विकल्पात्मक भूमिका में निर्विकल्प अनुभूति के प्रयास होते हैं। अब विकल्प-

निर्विकल्प की थोड़ी-सी चर्चा करते हैं; क्योंकि हमें अनुभव के सन्दर्भ में अथवा अनुभूति के बारे में चर्चा करनी है। आत्मानुभूति है या अनुभव है? मैं ऐसा कह सकता हूँ कि अनुभव तो ज्ञान की पर्याय है। इसका मतलब अनुभव से रहित तो ये जीव कभी हुआ ही नहीं है; क्योंकि यह जीव ज्ञान की पर्याय से रहित कभी-भी नहीं हुआ। ज्ञान तो सदाकाल है। इसलिए ज्ञान और ज्ञान की पर्याय से युक्त जीव सदाकाल ही है। अनुभव से रहित तो हम कभी हुए नहीं हैं, हर चीज़ का अनुभव तो दिन-प्रतिदिन करते रहते हैं, कभी आप गर्मी का अनुभव करते हैं, कभी सर्दी का अनुभव करते हैं, और कभी अलग-अलग तरह की परिस्थितियों का अनुभव करते हैं। मौसम कैसा है, वो भी अनुभव में आता है। अनुभव तो हर समय होता है, कभी खट्टे का, कभी मीठे का, कभी मिर्च का आदि इस तरह के अनुभव हमको होते हैं। हम बोलते भी हैं कि भाईसाहब धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं, अनुभव है। इसका मतलब आप ये जानते हैं कि अनुभव तो हम कर रहे हैं, लेकिन इस अनुभव की चर्चा यहाँ नहीं है। यहाँ तो आत्मा के अनुभव की बात है, जगत के अनुभव की बात नहीं है। अपने आपका अनुभव किया या नहीं, आत्मानुभव किया या नहीं? पर का अनुभव, विषयों का अनुभव, भोगों का अनुभव, जो कि भ्रमजनित था वह अनुभव अनंतबार किया। आत्मा का जो अनुभव है ये आत्मा का अनुभव प्रत्यक्ष होगा कि परोक्ष होगा? प्रत्यक्ष ही होगा, अनुभव तो परोक्ष नहीं होता।

लेकिन एक समस्या है, आप कह रहे हो अनुभव प्रत्यक्ष होगा और हम आपसे पूछते हैं कि आपका ज्ञान कैसा है तो आप कहेंगे- परोक्ष है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष ज्ञान हैं और अनुभव जो होता है वो प्रत्यक्ष होता है, अनुभव में परोक्षपना नहीं होता है। हमारी फीलिंग में, वेदन में परोक्षपना नहीं हो सकता है। इस बात को आप अनेक तरह से देख सकते हैं, बहुत सारे एंगल इसमें लागू हो सकते हैं। इस बात को

जानने-समझने के लिए कई उदाहरणों से आप इस बात को देख सकते हैं। दर्द हो रहा है, बताओ कैसा हो रहा है, अनुभव में आ रहा है। स्पर्शन इन्द्रिय के विषयों का ज्ञान भी वचनों से नहीं कहा जा सकता।

लड्डू कैसा है? बहुत अच्छा। अच्छा कैसा है? बता नहीं सकते। मिश्री का स्वाद कैसा है? मीठा। कैसा मीठा है? चीनी जैसा मीठा है, गुड़ जैसा मीठा है, गन्ने जैसा मीठा है, आम जैसा मीठा है, कैसा है? मीठा है, हम बोल नहीं सकते हैं; फिर भी बताओ आपने खाई है तथापि बोल नहीं सकते हैं। घी का स्वाद हो या नमक का स्वाद हो, मिश्री या मीठे का स्वाद हो, मिर्च का स्वाद हो, दुनिया में किसी भी विषय का स्वाद हो, बोला नहीं जा सकता है, बताया नहीं जा सकता है; क्योंकि जो भी स्वाद होता है वह अनुभवगम्य होता है। इसका मतलब अनुभव को बोला नहीं जा सकता है, अनुभव को बताया नहीं जा सकता है। अनुभव जो है वो वेदन की चीज है। जब ये अनुभव जगत के विषयों का अनुभव था तो भी आपको फीलिंग में आया तो कौन से ज्ञान से आया? आपने गुड़ का स्वाद लिया, तो गुड़ का स्वाद कौन-से ज्ञान से अनुभव में आया - प्रत्यक्ष या परोक्ष? किताबों में पढ़-पढ़ कर आपने कहा कि गुड़ मीठा होता है। गुड़ पर पीएच.डी. कर लेवें लेकिन गुड़ को अपनी जीभ पर न रखें तो वो बात नहीं होगी, जो बात जीभ पर रखने वाले के मन-मस्तिष्क में आएगी।

तू मर गया। अरे भाई! मैं जिंदा हूँ। चुप रह मूर्ख। तेरी बात मानेंगे कि डॉक्टर की बात मानेंगे? डॉक्टर कुछ भी कहे, लेकिन मैं तो अपने आपको जिंदा अनुभव करता हूँ। मेरा जो यह जिंदापन का अनुभव है, वो मेरी फीलिंग में आ रहा है, यह किसी और के कहने की अपेक्षा नहीं रखता है कि कोई मुझे आकर कहे कि तुम जिन्दा हो।

एक प्रसंग आता है। कई वर्षों पहले दादा से सुना होगा कि किसी महिला का पति परदेश में कमाने के लिये गया और बहुत लंबे समय तक नहीं आया। पत्नी की चिट्ठी पहुँची, उसमें लिखा था - आप कब

आएँगे? यहाँ तो हमारा हाल ही बेहाल हो गया। आपके बिना तो मैं विधवा जैसा महसूस कर रही हूँ। आपकी याद आती है। पति को चिट्ठी पढ़कर विधवा शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया तो उसने अड़ोस-पड़ोस में पूछा कि विधवा माने क्या होता है? किसी ने बताया कि जिसका पति मर गया हो, उसे विधवा कहते हैं। यह बात समझकर वो रोने लगा। किसी अन्य ने पूछा - क्या हुआ? तो बोला - मेरी पत्नी विधवा हो गई। तुझे पता है तू क्या कह रहा है? बिल्कुल सच कह रहा हूँ। ये सच्ची बात है, पत्नी की चिट्ठी आई है उसमें लिखा है। अरे मूर्ख! तू जिंदा बैठा है न यहाँ? अरे वो झूठ तो बोलेगी नहीं। अरे! उसकी बात झूठ नहीं है पर तेरे समझने का फर्क है, तू समझ नहीं रहा कि बात क्या है?

कुल मिलाकर बात यह है कि हमें करना है आत्मा का अनुभव, हमें करनी है आत्मा की अनुभूति और वर्तमान में चल रहा है पंचमकाल और हमारे पास ज्ञान है मति और श्रुत, जिनागम में मति और श्रुत ज्ञान को परोक्षज्ञान कहा है। अनुभव प्रत्यक्ष होता है तो प्रत्यक्ष के लिये प्रत्यक्ष ज्ञान चाहिये। हम परोक्षज्ञान के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव कैसे करेंगे? यदि तुम परोक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष अनुभव करने का प्रयत्न करोगे, तो हमें बतलाओ अवधि, मन:पर्यय ज्ञान तो देश प्रत्यक्ष है, ठीक है देश प्रत्यक्ष से काम चला लेंगे, तो सुनो वो तो परपदार्थ को ही जानते हैं, आत्मा को जानने में सहयोगी होते ही नहीं। तो सकल प्रत्यक्ष है केवलज्ञान, तो क्या केवलज्ञान होने पर आत्मा का अनुभव होगा? फिर तो आत्मानुभूति भी केवलज्ञान होने पर ही होगी, छद्मस्थ को नहीं हो पाएगी। इसका सीधा-सादा अर्थ निकला कि ग्यारहवें गुणस्थान तक के जीव आत्मानुभूति, शुद्धोपयोग से रहित हो जायेंगे; क्योंकि प्रदेश प्रत्यक्ष जिसे कहा है वो तो केवलज्ञान में होता है, तब तक सिर्फ और सिर्फ स्वानुभव प्रत्यक्ष है। बारहवें गुणस्थान तक सिर्फ और सिर्फ आगम के अनुसार प्रत्यक्ष है। वेदन में प्रत्यक्ष है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

आप जानते हैं केवली और श्रुतकेवली में क्या फर्क है? प्रत्यक्ष और परोक्ष का फर्क है बस, और कुछ नहीं। केवलियों का केवलज्ञान उसमें सारा लोक प्रत्यक्ष झलक रहा है, और श्रुतकेवली के प्रत्यक्ष नहीं झलक रहा है, आगम के आधार से झलक रहा है, इतना-सा फर्क है, बाकी सब वही है। ऐसे ही चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के छद्मस्थ ज्ञानियों के अनुभव में आत्मा बिल्कुल सिद्ध भगवान जैसा आ रहा है। बस ! उन्हें एक-एक प्रदेश, एक-एक गुण, एक-एक धर्म, एक-एक शक्ति स्पष्ट दिखाई दे रही है, और छद्मस्थ जीव को सिद्धों के समान स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही है, बस इतना-सा फर्क है और कोई फर्क नहीं है। परोक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष अनुभव की बात कह रहे हो? हाँ जी बिल्कुल। एक बात बताइये, ये जो आत्मा की अनुभूति हमारे ज्ञान से होगी तो हमारा ज्ञान पाँच इन्द्रिय और मन से जानता है। इन्द्रियों से तो आत्मा का अनुभव होता नहीं, तो फिर मन से होता है? मैं उसी भेदविज्ञान और तत्त्वविचार को जोड़ कर आगे बढ़ रहा हूँ; जो चर्चा हम पहले कर चुके हैं। हमें तो एक वाक्य में जवाब दे दीजिये, आत्मा का अनुभव मन से होता है या मन के बिना होता है अथवा दूसरे शब्दों में बात करें तो सैनी को होता है या असैनी को होता है? यदि आप ये कहेंगे कि मन के बिना होता है मन से नहीं होता, तो असैनी को हो जायेगा, सैनी पंचेन्द्रिय की शर्त क्यों है? और यदि आप ये कहते हैं कि नहीं-नहीं सैनी पंचेन्द्रिय होना तो जरूरी है तो इसका मतलब मन से होता है? वास्तव में तो मन वाले को होता; लेकिन मन से नहीं होता है। जब मन पावे विश्राम तब होता है। मन वाले को होगा; लेकिन मन से नहीं होगा। बिना मन वाले को भी नहीं होगा, मन वाले को होगा, सैनी पंचेन्द्रिय जीव को होगा; लेकिन मन से ही नहीं होगा, बल्कि मन पावे विश्राम तब होगा।

तो प्रश्न ये खड़ा होता है कि जब मन विश्राम को प्राप्त कर जावे तो फिर मन की जरूरत क्या है? मन का काम खत्म हो जायेगा तब होगा

न, थोड़ा-सा उपयोग को एकाग्र करना पड़ेगा, हम जिस तत्त्वविचार को अपने उपयोग में घुमा रहे थे, भेदविज्ञान का जो अभ्यास चल रहा है। भेदविज्ञान की धारा अन्दर में बह रही है, भेदविज्ञान की बहती हुई धारा निरंतर जब मन के माध्यम से अनवरत चलती रहती है, वो जब अपनी सीमा पर पहुँचेगी तो काम होगा अर्थात् मन से भी नहीं होगा और मन के बिना भी नहीं होगा। गजब बात है, मन के बिना भी नहीं होगा और मन से भी नहीं होगा, ये कैसी बात है? मन की जरूरत है; लेकिन मन के विकल्पों को भी तोड़ने की जरूरत है।

देवसेन आचार्यदेव ने इस अनुभव के संदर्भ में गजब बात की है। स्वानुभव प्रत्यक्ष के लिये पहले परोक्ष अनुभूति होती है। स्वानुभव प्रत्यक्ष की ये जो बात आप कह रहे हो कि स्वानुभव प्रत्यक्ष ही होता है और फिर कह रहे हैं कि जब तक परोक्ष अनुभव नहीं होगा तब तक प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होगा - ये क्या है? हाँ जी बिल्कुल ऐसा ही है। जब तक परोक्ष अनुभव नहीं होगा तब तक प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होगा, अनुभव परोक्ष भी होता है क्या? हाँ परोक्ष भी होता है, हमारे जिनागम में परोक्ष अनुभव की बात भी कही है।

इतनी देर से तो आप ये समझा रहे थे- अनुभव प्रत्यक्ष होता है, स्वानुभव प्रत्यक्ष होता है और अब आप ये कह रहे हैं कि अनुभव परोक्ष होता है। कुछ समझ में नहीं आ रहा है, ये क्या गोल-गोल बात हो रही है। देवसेनाचार्य कहते हैं कि जिसप्रकार की चर्चा हम कर चुके हैं, वो पूरी-पूरी प्रक्रिया इस अनुभव के लिए जरूरी है। किसलिए जरूरी है? तो कहा परोक्ष अनुभूति के बिना प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं होती है, प्रत्यक्ष अनुभूति करने वाले को प्रत्यक्ष अनुभूति के पहले परोक्ष अनुभूति होती है। आप यहाँ मंदिर में पहली बार आये तो आपको यहाँ आने के पहले यहाँ के बारे में चित्र बन रहा होगा कि ऐसा मंदिर होगा। जो भी चीज पहली बार हो या प्रत्यक्ष हो, तो ऐसा होने लगता है; सुन-सुनकर उसका चित्र बनने लगता है।

जो व्यक्ति सम्मेदशिखरजी नहीं गया हो और सम्मेदशिखरजी जाने वाले लोगों से उसने सिर्फ चर्चा की हो तो दिमाग में सम्मेदशिखरजी की बातें सुनकर एक चित्र बनने लगता है। जो चित्र बन रहा है, उसे जिनागम में परोक्ष अनुभूति कहते हैं। पंचमेरु का चित्र बन रहा है, नंदीश्वर का चित्र बन रहा है, वह चित्र सुन-सुनकर बन रहा है, फोटो देखा हो तो बात अलग ही हो गई। बिना फोटो देखे भी सुन-सुनकर ऐसा है, इतनी चढ़ाई है सम्मेदशिखरजी की। सुबह 3 बजे उठकर के चढ़ना शुरू करते हैं। अब दिमाग में पिक्चर बनना शुरू; अच्छा इतनी जल्दी उठकर रात को ऐसे चढ़ते हैं, नंगे पाव चलते हैं, हाथ में लकड़ी लेकर जाते हैं, अब वो माहौल दिखाई देने लगता है। हमारे दिमाग में पूरी पिक्चर बनने लग जाती है। जो पिक्चर बनी क्या ऐसी ही पिक्चर आत्मा के बारे में भी बनती है? आत्मा के बारे में, जिसे आप प्रत्यक्ष अनुभूति कह रहे हैं। आगम आधार से, गुरुमुख से सुन करके क्या आपको ऐसी परोक्ष अनुभूति शास्त्रों के आधार से हुई है? नहीं, नहीं परोक्ष अनुभूति तो नहीं हुई, जब तक न हुई तब तक प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं होगी। जमीन पर मकान का नक्शा देखकर मकान खड़ा हुआ देख लेते हैं, मकान बनने के पहले हमारे दिमाग में आ जाता है, कपड़े सिलने के पहले टेलर कपड़े आपके कंधे पर रखकर दिखाता है ऐसा सूट बनेगा। मकान बनने से पहले, काम होने के पहले, निगाह में बनने लग जाता है। आर्किटेक्ट बनाकर दिखा देता है, नक्शा बनाकर चित्र बनने लग जाता है कि इस जगह पर ऐसा होगा और इस जगह पर ऐसा होगा। ऐसे ही आगम आधार से शास्त्रों को गुरुमुख से सुनकर, वीतरागी संतों की वाणी सुनकर या तत्त्व के आधार से आत्मा के स्वरूप की पिक्चर थोड़ी क्लियर होनी चाहिये। आज के समय में न तो ऐसे ज्ञानी हैं, न ऐसे उपदेशदाता हैं, आज के समय में आत्मा का अनुभव करना तो बड़ा मुश्किल है, यदि साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा होते तो यह बात हमें समझ में आ जाती; समझाने वाले तीर्थंकर परमात्मा हों तो बात ही

कुछ अलग है, तीर्थंकर परमात्मा कह रहे हों, दिव्यध्वनि में आत्मा की चर्चा चल रही हो, हम सामने बैठकर सुनें। काश! चौथा काल होता। काश! हम विदेह क्षेत्र में होते। काश! हम तीर्थंकर परमात्मा की दिव्यध्वनि सुन रहे होते। सीमंधर, युगमंधर, बाहु-सुबाहु आदि की दिव्यध्वनि सुन रहे होते तो बात कुछ अलग ही होती।

हमने आज तक सुनी नहीं है क्या? समयसार संवर अधिकार में जयसेन आचार्यदेव अपनी टीका में लिखते हैं कि समवसरण में तीर्थंकर परमात्मा हाथ में लेकर आत्मा नहीं दिखा देते। समवशरण में तीर्थंकर परमात्मा दिव्यध्वनि के माध्यम से भगवान आत्मा का स्वरूप बताते मात्र हैं और वहाँ भी अनुभव तो स्वयं के पुरुषार्थ से ही करना पड़ता है। दिव्यध्वनि को सुनते हुए भी वहाँ तीर्थंकर परमात्मा के सामने भी अनुभव तो स्वयं को ही करना पड़ता है। वे अनुभव कराते नहीं और करा सकते भी नहीं, यदि वे अनुभव कराने लग जाते तो सभा में बैठे असंख्यात जीवों को आत्मानुभव हो जाता। गाय-भैंस, कुत्ता, घोड़ा, बिल्ली आदि सभी को जैसा स्वरूप तीर्थंकर परमात्मा ने दिव्यध्वनि में बतलाया है, वैसा ही स्वरूप वीतरागी संतों ने यहाँ वर्तमान में बताया है। जैसा स्वरूप भगवान महावीर स्वामी ने अपनी दिव्यध्वनि में बतलाया, वैसा ही स्वरूप इन्द्रभूति गौतम ने बतलाया, वैसा ही स्वरूप कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने बतलाया और वैसा ही स्वरूप हम तक चला आया है, उस वाणी में रंचमात्र भी फर्क नहीं है। जैसा केवली के ज्ञान में आया वैसा ही हमारे ज्ञान में है, कोई फर्क नहीं है। मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का फर्क है।

हमारे दिमाग से ये बात निकल जावे कि वर्तमान में तो पंचम काल चल रहा है, वर्तमान में तो कुछ हो नहीं सकता है, हमें तो तीर्थंकरों का विरह है। अरे कुन्दकुन्दाचार्य देव ने तीर्थंकरों के विरह को भुला दियाऔर इस पंचमकाल को चौथा काल बना दिया। जो चर्चा चौथे काल में चलती थी, वही यहाँ चल रही है। जो चर्चा दो हजार साल

पहले कुन्दकुन्दाचार्य के समय में चलती थी वही वर्तमान में चल रही है। जो चर्चा टोडरमलजी के समय में ढाई सौ-तीन सौ वर्ष पहले चला करती थी, वही चर्चा आज यहाँ चल रही है। क्या फर्क है? हमारे पास तो वे बातें भी हैं जो टोडरमलजी लिखकर गये हैं, अमृतचन्द्राचार्य बता कर गये हैं, कुन्दकुन्दाचार्य भी तो बताकर गये हैं, वह मूल बात है इसलिये विकल्प करने की जरूरत नहीं है, लेकिन फिर भी बिना विकल्पों के काम नहीं होगा।

आत्मा का अनुभव विकल्प अवस्था में होता है कि निर्विकल्प अवस्था में होता है? निर्विकल्प अवस्था में होता है तो विकल्प मत करो। निर्विकल्प के पहले विकल्प आयेंगे और वे विकल्प आत्मा के बारे में ही निर्विकल्प के पहले वाले ही विकल्प हैं। ये परोक्ष अनुभूतिरूप हैं वो भेदविज्ञान रूप हैं, वस्तुस्वरूप के विचार रूप हैं। विकल्पात्मक भूमिका में आत्मा का निर्णय चलता रहे, विकल्पात्मक भूमिका में पहले पर-संयोगों से, परिवार से, शरीर से पृथक् हों और फिर अंदर जाते जाएँ, जब विकल्पों को तोड़ना ही था तो विकल्प करवाए ही क्यों? विकल्प करायेंगे भी और छुड़ाएँगे भी। विकल्प ही नहीं होगा तो काम कैसे होगा? मैं कई बार कहता हूँ कि दुनिया में कोई काम ऐसा नहीं है जिस काम के होने के पहले उस काम संबंधी विकल्प न चलते हों। भोजन करने का विकल्प भी न आए और भोजन हो जाये, ऐसा नहीं होता। दुकान खोलने का विकल्प भी न हो और दुकान खुल जावे, मंदिर आने का विकल्प भी न हो और मंदिर पहुँच जाएँ, ऐसा हो सकता है क्या? सुनने का विकल्प भी न हो और सामने मोबाइल लगाकर प्रवचन सुनना शुरू कर दें, ऐसा भी हो सकता है क्या? मुझे ये विकल्प नहीं आया और अपने आप ही कार्य हो गया, ऐसा कैसे हो सकता है?

विकल्प आए बिना दुनिया का कोई काम नहीं हो सकता है। आपकी ये शिकायत है कि 15 साल हो गये सुनते हुए; परन्तु आत्मा

का अनुभव नहीं हुआ। हमारा प्रश्न है कि क्या आपको आत्मा सम्बंधी विकल्प आया? हम कह तो रहे हैं अनुभव नहीं हुआ परन्तु उसका विकल्प भी हमें कब आया? अच्छा आपका दिनभर का प्रोग्राम बताइये? अरे! प्रोग्राम क्या? यहाँ से उठेंगे घर जायेंगे, नाश्ता करेंगे, दुकान/ऑफिस जायेंगे, आपका दिन में प्रवचन आना है वो दुकान में सुन लेंगे, शाम को घर आकर भोजन कर लेंगे, रात को परिवार के साथ समय बिता लेंगे और सो जायेंगे। इस तरह से अच्छी लाइफ चल रही है। जो काम आज कर रहे हैं, कल क्या होगा? कल भी सारा दिन लगभग ऐसा ही होगा। परसों का? परसों भी ऐसा ही होगा। कल कैसा था? कल भी ऐसा ही था। अरे! ऐसा कब से चल रहा है? ऐसा तो वर्षों से चल रहा है।

इसमें आपने दो घड़ी निजनाथ के नजदीक आने के लिये तो समय निकाला ही नहीं; हमारे एजेंडा में ये चीज ही नहीं है। अपनी आत्मा का अनुभव करने की बात हमारी दिनचर्या में शामिल नहीं है और शिकायत वर्षों की बनी है कि अनुभव नहीं हो रहा है। भैया कम-से-कम दिनचर्या में तो हो। यदि डॉक्टर के यहाँ जाता है और सुबह से शाम तक तबीयत ठीक नहीं होती है तो विचार करता है कि दूसरे डॉक्टर को दिखा दें क्या? और दो दिन तक ठीक नहीं हो तो दूसरा डॉक्टर बदल ही लेता है। एलोपैथी से काम न चले तो होम्योपैथी, होम्योपैथी से काम नहीं हो तो आयुर्वेद की तरफ चला जाता है, आयुर्वेद से काम नहीं हो तो प्राणायाम की ओर चला जाता है, प्राकृतिक चिकित्सा वाले के पास चला जाता है लेकिन बराबर दिमाग में रहता है कि ठीक नहीं हुआ, अभी भी ठीक नहीं हुआ। क्या इसीप्रकार हमें रात को सोते समय रोज ये विकल्प आता है कि अनुभव नहीं हुआ, आज आत्मा की अनुभूति नहीं हुई, आज भी सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, आज भी भेदविज्ञान की चरम सीमा पर नहीं पहुँचे, आज भी तत्त्वनिर्णय नहीं हुआ, आज भी गुणस्थान पहले से चौथा नहीं हुआ। आज का दिन फिर निकल

गया, फिर दूसरे दिन, रोजाना दिमाग में ऐसा चलेगा तो हम ये कहेंगे कि आपको सच में आत्मा का अनुभव करने का, आत्मानुभूति करने का विकल्प है। विचार करने के लिये कह रहा हूँ।

भैया आपको अनुभव नहीं हो पा रहा है तो आपने पूछा अपने गुरुओं से, वीतरागी संतों से, अपने उपदेशदाता से कि चूक कहाँ रह गई है? कहाँ भूल हो रही है? कहाँ गलती हो रही है? मैं कहाँ अटक रहा हूँ? निर्णय करो, बराबर प्रयास करो, अभ्यास करो, निरंतर चिंतन की धारा में यह चलने दो, पहले समझो। अभी तो समझ ही नहीं रहे हैं तो समा जाना तो बहुत दूर की बात है। पहले समझना होता है फिर समा जाना होता है। जो अभ्यास कर रहे हैं उन्हें इस अभ्यास के माध्यम से समझना होता है और समा जाना किसी के माध्यम से नहीं होता, समा जाना व्यक्तिगत काम है। समझना भले यहाँ गुरुओं के निर्देशन में हो गया, लेकिन समा जाना व्यक्तिगत काम है। हम यहाँ समूह में इकट्ठे होकर समझने के लिये तो आ गये; लेकिन समा जाने के लिये तो हमें अकेले ही बैठना पड़ेगा और उस विकल्पात्मक भूमिका में ही निर्विकल्प होने का कार्य होगा।

द्रव्य से आत्मा कैसा है? भाव से देखो आत्मा किस तरह का है? अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा, उनकी अवस्थाएँ, उनके गुण, उनकी पर्याय, उनकी जीवत्वशक्ति, चितिशक्ति, ज्ञानशक्ति, शक्तियों के बारे में चिंतन, कभी 47 नय के माध्यम से आत्मा के स्वरूप का चिंतन – इसप्रकार से चिन्तन में यह चलता रहना चाहिए। ये बहुत जरूरी है, ये नहीं होगा तो काम नहीं चलेगा; लेकिन इतना होने मात्र में कि मेरा तो मन मिल गया है, अटक कर रह गये तो भी काम नहीं होगा।

मैं ये कहता हूँ कि किसी व्यक्ति को राजा बनना है सो राजघराने में तो ऐसा ही होता है कि राजा का पुत्र राजा बन सकता है तो राजा का पुत्र होगा तो राजा बनेगा। तो जो राजकुमार है वो राजा क्यों नहीं बन रहा है? पिताजी/राजा अभी जब तक हैं तब तक वह राजा नहीं बन

पाएगा। मैं ये कह रहा हूँ कि ये जो अभी राजा हैं राजगद्दी पर बैठे हैं वो उस राजकुमार के राजा बनने में सहयोगी हैं या विरोधी हैं? तो सुनो! यदि तू इनका पुत्र नहीं होता तो भी राजा नहीं बन पाता; लेकिन जब तक ये राजगद्दी पर बैठे रहेंगे तब तक भी तू राजा नहीं बन पाएगा तो राजा बनने के लिये इनका पुत्र होना भी जरूरी है और इनका राजगद्दी से उतरना भी जरूरी है। अब या तो वे मरण को प्राप्त हो जावें या दीक्षा लेकर चले जावें। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक राजा का अस्तित्व बना रहेगा तब तक वह राजा नहीं बन पाएगा। राजा बनने के लिये तो उनका पुत्र होना जरूरी है। इसी तरह ये मन होना तो जरूरी है।

मन नहीं होगा, मन में ये विकल्प नहीं चलेंगे तब भी तू अनुभव नहीं कर पाएगा और मन में ये विकल्प चलते रहे, ये विकल्प मरे नहीं तब तक भी तू अनुभव रूपी राज्यगद्दी को प्राप्त नहीं कर पायेगा। विकल्प भी होंगे और विकल्पों को तोड़ना भी होगा। कपड़े धुलने से पहले साबुन लगेगा भी और साफ होने के लिये धुलेगा भी। नदी पार करने के लिये नाव में बैठेंगे भी और नाव से उतरेंगे भी। आप मन और विकल्पों का निषेध नहीं कर सकते, मन और विकल्पों का निषेध कर दिया तो भी काम नहीं होगा और विकल्पों में ही उलझ गये तो भी काम नहीं होगा, विकल्प दूसरे हुए तो भी काम नहीं होगा। कितनी तरह की शर्तें हैं। अभी विषय-कषाय सम्बंधी विकल्प चल रहे हैं तो काम नहीं हो पा रहा है। विषय-कषाय, व्यापार आदि के विकल्पों से बचकर हमें सम्यक् विकल्पों की तरफ आना होगा और जो विषय-कषाय, व्यापार आदि रूप विकल्प चल रहे थे, उनसे जिनमंदिर की तरफ आये, देव-शास्त्र-गुरु की तरफ आये, फिर जिनेन्द्रदेव और गुरु की वाणी तक आये, फिर इनका जो प्रतिपाद्य है अर्थात् इन्होंने मेरा जैसा स्वरूप बतलाया है, उसका विकल्प चलता रहे। आत्मा के गुणभेद, प्रदेशभेद आदि के बारे में विकल्प चलते रहें और फिर क्रमश: ये भेद दिखना भी बंद हो जाएँ तो निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति प्रारम्भ हो जाती है।

चलते हुए पंखे में कितनी पंखुड़ियाँ हैं? अभी दिखा देते हैं। स्विच ऑफ कर दिया अब देखो कितनी हैं, तीन हैं। अब दिख तो रही हैं परन्तु हवा नहीं आ रही है। अभी चालू कर देते हैं अब हवा आ रही है; लेकिन दिख नहीं रही हैं। जब तक तीन दिखेंगी हवा नहीं आएगी, जब हवा आएगी तो तीन दिखना बंद हो जायेंगी। तीनों पखुड़ियों को उतार दें तो भी हवा नहीं आएगी। हवा के लिए तीन पंखुड़ियाँ भी चाहिए और दिखनी भी नहीं चाहिए।

ऐसा ही स्वरूप है आत्मा के अनुभव के पहले – आत्मा है पंखा और आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख चार पखुड़ियाँ हैं। आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख की पंखुड़ियाँ मौजूद रहेंगी, जब तक विकल्पात्मक दशा में दिखती रहेंगी, तब तक अनुभव नहीं होगा और जब दिखना बंद हो जायेंगी तब अनुभव होते देर नहीं लगेगी। समयसार की सातवीं गाथा में कहा है कि आत्मा में दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, ये भेद समझने मात्र के लिये थे। आत्मा में जीवत्व, चिति आदि शक्तियाँ हैं, ये जो गुण भेद हैं, ये जो शक्तियों के भेद हैं, ये सब आत्मा को समझाने के लिए हैं। समझ में आ गया तो बंद करो, बंद कैसे करें? बंद करने का एक ऐसा चक्कर है कि जब आप थकते हैं और नींद लेने की जैसी प्रक्रिया होती है वैसी ही निर्विकल्प अनुभूति की प्रक्रिया होती है। बच्चा सो रहा है – माँ ने पूछा, पप्पू नींद आ गई क्या? आ गई, समझना क्या है कि नहीं आयी और जब कोई जवाब नहीं मिला तब इसका मतलब है आ गई। जब आपके मन में आत्मा दिख रहा है, ज्ञान-दर्शन दिख रहे हैं, शक्तियाँ दिख रही हैं, मजा आ रहा है इसका मतलब अभी अनुभूति नहीं हुई। अभी जो दिख रहा है, जो विकल्प आ रहे हैं, तब तक अनुभव नहीं होता है। नींद लेने की प्रक्रिया में हमारे जो विकल्प होते हैं वे शिथिल होते चले जाते हैं। आत्मा का स्वरूप समझ रहे हैं यहाँ विकल्पात्मक दशा से मन में, ज्ञान में (मन पावे विश्राम तक पहुँचना है) ऐसा चलता रहता है कि आत्मा का स्वरूप ऐसा है, ऐसा है

मन अब थक गया। अब क्या हुआ अब विश्राम महसूस कर रहा है, आत्मा शब्द जब तक बना रहेगा तब तक आत्मा का अनुभव नहीं है और ये शब्द भी जिस क्षण विराम को प्राप्त हो जायेगा; सर्व प्रकार के विकल्प स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे। समस्त पर-पदार्थों से पार और पर्यायों से भिन्न विकल्प मात्र से पार, गुण भेद से परे ऐसा जो चैतन्यतत्त्व विकल्पात्मक दशा में चल रहा था और चलते-चलते एक क्षण ऐसा आया कि विकल्प टूट गया और निर्मल निर्विकल्प आत्मा की अनुभूति हो गई। इसी प्रक्रिया से अनुभव होता है। उस विकल्प से निर्विकल्प होने की प्रक्रिया समझना चाहिए, उस परोक्ष अनुभूति से प्रत्यक्ष अनुभूति तक की प्रक्रिया समझना चाहिये और हम ऐसी परोक्ष अनुभूति के आधार से प्रत्यक्ष अनुभूति की प्रक्रिया तक पहुँच सकते हैं।

अभी तक हम तत्त्वविचार की चर्चा कर चुके हैं, आत्मानुभूति की चर्चा कर चुके हैं, आत्मानुभूति की प्रक्रिया की चर्चा कर चुके हैं; लेकिन करने योग्य कार्य तो यही है कि आत्मानुभूति कैसे हो, आत्मतत्त्व की उपलब्धि कैसे हो या आत्मा कैसे पकड़ में आए? मैं कौन हूँ? उसे कैसे पकड़ा जा सकता है? कैसे जाना जा सकता है? उसकी पहिचान कैसे की जा सकती है?

एक जवाब है कि आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व 'मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ'। मैं आत्मानुभूति से प्राप्त होने वाला तत्त्व हूँ किसी और चीज से प्राप्त होने वाला नहीं हूँ। यदि मुझे भी अपने आपको जानना है, प्राप्त करना है, अपने आपकी खोज करना है। अपने आपको पहिचानना है तो अपने आपको कैसे जानें, कैसे पहिचानें, कैसे प्राप्त करें, उसकी क्या विधि है? 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' - ये एक बहुत सुंदर रचना, आदरणीय डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखी गई, लगभग पचास साल से ज्यादा पुरानी रचना है, जो कि 1970 के आस-पास लिखी होगी। जब वे जयपुर शिफ्ट हुए तब आ. पूरणचंदजी गोदीका के निवेदन पर एक कीर्तन लिखा, जिसमें सारे जिनागम का सार आ गया। हम

इसके अर्थ की थोड़ी-बहुत चर्चा करते हुए आत्मस्वरूप को पकड़ने की कोशिश करेंगे।

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ

मैं कौन हूँ? मेरा स्वभाव ज्ञान और आनंद से परिपूर्ण है। दुःखी होना मेरा स्वभाव नहीं है, पीड़ित होना मेरा स्वभाव नहीं है। लोग कहते हैं कि क्या बताएँ, वर्तमान में तो हम बहुत दुःखी हो गये। कोई माँ-बाप से दु:खी है, कोई बच्चों से दु:खी है, कोई पति से, कोई पत्नी से, कोई पड़ोसी से, तो कोई व्यापार से। जगत में हर व्यक्ति दु:खी दिखाई दे रहा है, लेकिन यहाँ कह रहे हैं दुःख तो मेरा स्वभाव ही नहीं है। मेरा स्वभाव तो आनंद है, मुझे तो ये समझ में नहीं आता।

अरे! ज्ञान तो तेरा स्वभाव है और तू तो समझ का पिंड है। ये क्या बात कह रहे हैं कि मैं ज्ञान और आनंद से पूरा भरा हुआ हूँ। मैं ज्ञान से बना हुआ हूँ, मैं आनंद से बना हुआ हूँ। मुझमें ज्ञान है, मेरे प्रदेश-प्रदेश में ज्ञान व्याप्त है। यदि मुझे अपने आपको जानना है, मुझे अपने आपको पकड़ना है, अपने आपको सारे जगत में ढूँढ़ना है तो एक लक्षण ऐसा बतलाया है जिस लक्षण का नाम ज्ञान है। ज्ञान से पहिचानिये, ज्ञान से देखिये। जब कभी कोई बच्चा बोलता है – मैं बहुत परेशान हो गया हूँ, तो मैं उससे पूछता हूँ तुम कौन हो। वो लाइन/कीर्तन सुनाओ 'मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।' तुम तो कह रहे हो कि मैं दु:खी हूँ लेकिन बताओ कि तुम ज्ञान स्वभावी हो या अज्ञान स्वभावी हो, तुम सुख स्वभावी हो कि दु:ख स्वभावी हो?

विचार करना जरा कि आत्मा दुःख स्वभावी है या आनंद स्वभावी है? मैं कौन हूँ? इसकी तलाश जारी है। इस लक्षण से हमें पहिचानना है। बड़ी सुंदर रचना है। इसमें एक-एक शब्द चुन-चुन कर रखा है। इससे सुन्दर कीर्तन नहीं हो सकता, इससे सुन्दर आत्मकल्याण के लिये प्रेरणास्पद बातें नहीं हो सकतीं। आत्मा को पहिचानने के लिये, आत्मानुभूति के लिए एक निष्कर्ष रूप आठ लाइन कह दी हैं। आठ-

दस लाइन में पूरी बात आ गई है। जिनागम का सार आ गया है। करने योग्य कार्य क्या है वो आ गया, विकल्पों में क्या होना चाहिये, चिन्तन में क्या होना चाहिए, इसकी चर्चा हम पूर्व में कर चुकें हैं –

दो घड़ी निजनाथ के नजदीक तो आओ,
अपनी प्रभुता देख लो बाहर न भरमाओ।

देखो! अपनी प्रभुता को देखो। कैसे देखूँ और कहाँ देखूँ? आप ही बता दीजिए? तो दादा यहाँ पर अपनी प्रभुता बता रहे हैं – आश्चर्यपूर्ण इसको देखो, मैं कैसा हूँ?

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।

मैं स्वयं में पूर्ण हूँ, मैं अपूर्ण नहीं हूँ। प्रभु तू तो अपने आप में परिपूर्ण तत्त्व है, तुझमें किसी तरह की कोई कमी नहीं है। नहीं–नहीं अभी तो कमी है बस एक बंगला बन जाये और एक अच्छी–सी गाड़ी आ जाए। अरे भाई! तू परिपूर्ण है, कोई कमी नहीं है। देखिये जब कोई कमी होती है तो पर की तरफ देखा जाता है। यहाँ परिपूर्ण सत्य कह रहे हैं, ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुणों से भरापूरा परिपूर्ण कह रहे हैं। दादा का यह भजन समयसार का पद्यानुवाद है। ये आत्मा सुख और शांत रस से लबालब भरा हुआ है।

आचार्य अमृतचन्ददेव ने क्या गजब की पंक्ति लिखी है कि जगत् के सभी जीव मिलकर निज ज्ञानसागर में डुबकी लगाएँ। तीन लोक के असंख्यात जीव मिलकर यदि एक साथ अतीन्द्रियानंद के रस में डुबकी लगाना चाहें तो एक साथ लगा सकते हैं। मैं अनंत इसलिये नहीं कह रहा हूँ; क्योंकि अनंत नहीं लगा सकते हैं। असंख्यात इसलिये कह रहा हूँ; क्योंकि असंख्यात तिर्यंच गति के जीव सम्यग्दृष्टि, असंख्यात देवगति के जीव सम्यग्दृष्टि, असंख्यात नारकी सम्यग्दृष्टि और पूरे ढाईद्वीप में सात सौ करोड़ सम्यग्दृष्टि, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती असंख्यात हैं

और सब मिलकर यदि एक स्थान पर स्नान करना चाहें तो उसमें किसी तरह की कोई कमी आने वाली नहीं है।

यह ज्ञान से लबालब भरा हुआ है, एक इंच भी जगह खाली नहीं है। जगह खाली हो तो उसमें राग का प्रवेश हो, विभाव का प्रवेश हो। जगह खाली हो तो उसमें पर की जरूरत महसूस हो। यहाँ तो पर की जरूरत नहीं है। इस देह–देवल में विराजमान यह चैतन्य भगवान आत्मा ऐसा परिपूर्ण तत्त्व है, जिसमें पर की कुछ भी गंध नहीं है। ये राग भी, विभाव भी पर हैं।

''**पुद्गल नभ–धर्म–अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल**''

अर्थात् इनकी गंध मात्र भी इसमें नहीं है। देखो जरा अपनी आत्मा में गंध मात्र भी नहीं है अर्थात् रागादिक का अस्तित्व है ही नहीं। कोई चीज खत्म हो जाती है; लेकिन खत्म हो जाने के बाद भी उसकी गंध रहती है, यहाँ तो कह रहे हैं गंध भी नहीं है, इसका मतलब नामोनिशान नहीं है।

तो मैं कैसा हूँ?

मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बंध नहीं।

स्पर्शादि तो ये पुद्गल के गुण हैं। आत्मा में ऐसा रस है कि तुझे जगत में कहीं नहीं रुचता हो तो इस आत्मा में अपनापन कर, तुझे अवश्य रुचेगा और ऐसा सरस है कि जिसमें एक बार समा जायेगा तो सादि अनंतकाल के लिये वहाँ से निकलने का मन भी नहीं होगा, विकल्प भी नहीं आएगा और उसी आनंद रस में डुबकी लगाये रहेगा। ये जो दुनिया के स्विमिंग पूल होते हैं न; उसमें तो ये जीव जाता है, उतरता है तो आधे घंटे, एक घंटे, दो घंटे में और ज्यादा से ज्यादा चार घंटे मे थक जाता है फिर कहता है – बस बहुत हो गया। अरे! ये आत्मतत्त्व वो स्विमिंग पूल है, इतना सरस है, इस आत्मतत्त्व जितना रस इस दुनिया में कहीं नहीं है और जो आत्मा का रस एक बार चख लेता है फिर जगत के सारे रस उसे फीके लगने लगते हैं, ऐसा सरस है ये आत्मा, आत्मा तो

सरस होगा; लेकिन मेरी जिंदगी तो अरस है, नीरस हो गई है। क्या हुआ? जब से बच्चे का स्वर्गवास हुआ तब से तो मेरी जिंदगी नीरस हो गई, जब से ऐसा हो गया, वैसा हो गया, मेरी तो जिंदगी नीरस हो गई। अरे! क्या बात कर रहे हो? ये स्वभाव की चर्चा चल रही है, कैसे स्वरूप की चर्चा चल रही है? तू अरस, यहाँ अरस का अर्थ पौद्‌गलिक रस नहीं है, पुद्‌गल जैसा रस नहीं है। अरे! आनंद तो है। अद्भुत/अपूर्व आनंद है।

ये कोई अलग आनंद की चर्चा चल रही है। अरस कहकर कहना चाह रहे हैं रस नहीं है, पौद्‌गलिक रस नहीं है, जहाँ-जहाँ तुमने पंचेन्द्रिय विषयों में रस माना वो रस नहीं है; क्योंकि वो पौद्‌गलिक रस है। अस्पर्शी होते हुए भी चैतन्य का स्पर्श करके तो देख। ज्ञान के माध्यम से पकड़ में आता है। वह ज्ञान के माध्यम से दिखाई देता है। ये अमूरत होते हुए भी चिन्मूरत है, अरूपी होते हुए भी रूपी है। वर्णादि व निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध भी नहीं है। तो फिर ज्ञान ज्ञेय सम्बंध तो होगा, मैं तो ज्ञायक हूँ, जाननहार तत्त्व हूँ और ये जगत के पदार्थ जानने में आने वाले हैं तो कम-से-कम ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध की स्वीकृति तो होनी चाहिए। ज्ञान के सम्बंध से कुछ भी नहीं होता है? माननीय प्रधानमंत्री से भी हमारा सम्बंध है। अच्छा तो हमारा एक काम करवा दो, वैसे आपके लगते क्या हैं? वे हमारे ज्ञेय हैं और हम उनके ज्ञायक हैं, बस इतना ही सम्बंध है। दुनिया के समस्त पदार्थों के साथ में ज्ञान-ज्ञेय संबंध माने कुछ नहीं। ज्ञान का परिणमन ज्ञान में है और ज्ञेय अपनी योग्यता से ज्ञान में झलकते हैं, इसे ही ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध कहते हैं। ज्ञान-ज्ञेय सम्बंध में और कुछ नहीं होता। वो ज्ञेय भी ज्ञान की अपनी स्वावरण क्षयोपक्षम शक्ति से झलकते हैं।

स्वावरण क्षयोपक्षम अपनी-अपनी योग्यता से, स्वतंत्र योग्यता से जिस समय जिस ज्ञान का ज्ञेय जिसको बनना होता है वो ज्ञान का ज्ञेय बन जाता है। इसे क्या सम्बन्ध कहें? कुछ सम्बन्ध नहीं है। हम तो खाली हो गये कुछ नहीं बचा? अरे! आगे क्या कहते हैं - मैं रंग से भिन्न

हूँ, मैं राग से भी भिन्न हूँ, मैं भेद से भी भिन्न हूँ, मैं निराला तत्त्व हूँ। तीन शब्द दे दिये, यहाँ चार प्रकार के व्यवहारों को तीन प्रकार से कहा है। रंग, राग और भेद – तीन तरह के व्यवहार हैं और मैं इनसे भिन्न हूँ, पर द्रव्य से भिन्न बताने के लिये मैं रंग से भिन्न हूँ, मैं देह से भिन्न हूँ, देह का रंग रूप है, मैं रंग से भिन्न हूँ; लेकिन राग-द्वेष के परिणाम तो मेरे ही हैं, क्रोधादि के परिणाम तो मेरे ही हैं। गुस्सा तो मुझे ही आता है, ये विभाव भाव तो मेरे ही हो रहे हैं वो भी उपचरित सद्भुत व्यवहार है, ये भी विभाव है इसमें क्या तन्मयता करता है? क्या अपनापन करता है? विभाव भाव के साथ क्या लगाव रखता है मैं तो राग से भी भिन्न हूँ। ये जो मेरा ज्ञान दिखाई दे रहा है मैं इससे तो युक्त हूँ, ये जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से दिखने वाले भेद दिखाई दे रहे हैं। ये भेदाश्रित व्यवहार भी मुझमें नहीं है। मैं तो इससे भी भिन्न हूँ। रागादि से पकड़ में नहीं आने की अपेक्षा से अरस कह दिया है और कह रहे हैं पर से कुछ भी सम्बंध नहीं। मेरा पर-पदार्थों के साथ में किसी भी प्रकार का कोई सम्बंध नहीं है। नहीं-नहीं, पर के साथ में कुछ तो सम्बंध होगा? पिता-पुत्र का, माता-पिता-मित्र ये हमारे सम्बंधी हैं। परन्तु वास्तव में इनसे हमारा कोई सम्बंध नहीं है। परपदार्थों के साथ में निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध तो है? हमारा तो बहुत लोगों के साथ सम्बन्ध है। पण्डित टोडरमलजी साहब ने भी लिखा है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध बहुत घने हैं। सम्बंध तो है हमारा पर के साथ में? तो कहा कि नहीं है। क्या बात कर रहे हो? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को नहीं मानते आप? अरे भाई! निमित्त-नैमित्तिक की असलियत क्या होती है? जब काम हो रहा होता है उस समय अपनी योग्यता से जो सामने खड़ा होता है, उस वस्तु को निमित्त कह देते हैं, बस! ये सम्बंध है। घने बादल छाए थे और बरसात होने लगी तो काले बादलों का बारिश के साथ क्या सम्बंध है? ऊपर से सूर्य उदित हुआ इधर कमल खिल गया, क्या सम्बंध है? सूर्य से जाकर पूछा, तुम्हारा कमल से क्या

सम्बंध है? दिमाग ठीक है तेरा? मैं कमल को अकेले तो रोशनी नहीं देता हूँ, मध्यलोक में जहाँ-जहाँ सूर्य का प्रकाश जाता है उन सबको एकसमान भाव से प्रकाशित करता हूँ, कोई सम्बंध नहीं है। कमल से जाकर पूछा कि तुम्हारा तो बहुत अच्छा सम्बंध होगा? सूर्य के उदित होते तुम्हारी तो कली-कली खिल जाती है। कमल कहता है, हमारा तो कुछ रिलेशन नहीं है, बस! वो आता है, मैं खिल जाता हूँ, रिलेशन तो कुछ भी नहीं है। बस इसका नाम निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। इसके अतिरिक्त निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कुछ नहीं होता है।

हर वस्तु अपनी योग्यता से परिणमन करती है, इधर जो निमित्त है वो अपनी योग्यता से परिणमन करता है और यदि मैं आगम के शब्दों मैं कहूँ तो दोनों में एक काल की ही समानता है। इधर इसका परिणमन उधर उसका परिणमन दोनों के परिणमन का एक काल, इसका नाम निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। निमित्त माने चश्मदीद गवाह अर्थात् जिसकी उपस्थिति मात्र हो।

पर से कुछ भी सम्बंध नहीं और आप निमित्त-नैमित्तिक का बहाना बना कर बैठे थे। यहाँ यह बात स्पष्ट हो गई कि पर के साथ अर्थात् मैं रंग, राग और भेद से भिन्न हूँ; ये कितनी सुंदर बात कह रहे हैं।

आपने मुझमें से शरीर निकाल दिया, परद्रव्य कहकर उससे भिन्न कर दिया। आपने पहले परद्रव्यों को भिन्न कर ही दिया था। घर-बार मकान को भिन्न कर दिया, कोई बात नहीं -

मैं हूँ अखंड चैतन्य पिंड निज रस में रमने वाला हूँ।

मैं अखंड अर्थात् जिसे निकाला है वो मेरा नहीं था और जो मेरा है उसे निकाला नहीं जा सकता है, तू सोच रहा है बचा क्या है? हम कह रहे हैं सबकुछ तो बच गया, जो बचा है वही भरा-पूरा है, जो बचा है वो ही परिपूर्ण तत्त्व है। गुणों से खंडित नहीं होता, द्रव्य से खंडित नहीं होता, क्षेत्र से, काल से, भाव से खंडित नहीं होता। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से देखा जाए तो द्रव्य से अखण्ड, क्षेत्र से देखा जाए तो अभेद

अर्थात् असंख्यात प्रदेशों का घनपिंड है, काल से अनादि अनन्त तत्त्व है और भाव से देखा जाये तो अनन्त गुणों का घनपिंड है, शक्तियों का संग्रहालय है, गुणों का गोदाम है, ज्ञान का घनपिंड है – ऐसा अखंड तत्त्व, चैतन्य पिंड निज रस में रमने वाला, निज तत्त्व में लीन रहने वाला मैं हूँ। निजरस कौन उपलब्ध करायेगा, कौन प्राप्त करायेगा, उस आनंद रस का अनुभव कौन करायेगा। किसकी शरण में जाएँ? महावीर भगवान की शरण में जाएँ कि पार्श्वनाथ भगवान की शरण में जाने से होगा? न डॉक्टर की शरण में जाने से होगा, न वकील की शरण में होगा, न पंचपरमेष्ठी की, न जिनवाणी की शरण में होगा, तो फिर स्वयं ही करना होगा। दुनिया में कोई आगे नहीं आएगा, कोई सहयोग करने वाला नहीं होगा। खुद का काम खुद को ही करना पड़ता है।

मैं मुझमें रहने वाला हूँ पर में मेरा विश्राम नहीं। मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता हूँ, मेरा कर्त्ता-धर्त्ता कौन है? तू स्वयं तेरा कर्त्ता है कर्म तेरा कुछ नहीं करते, कर्म तेरा बिगाड़ने में समर्थ नहीं हैं, कर्म कुछ बिगाड़ते नहीं हैं, बिगाड़ सकते नहीं हैं, कर्मों में ये सामर्थ्य नहीं। क्योंकि मेरा कर्त्ता-धर्त्ता मैं ही हूँ। बहुत काम है मेरे पास में और आप कह रहे हो सारा काम तुझे ही करना पड़ेगा। हम तो सारा काम नौकर से कराते हैं। ये बात तो खतरनाक हो गई कि सारा काम स्वयं को करना पड़ेगा। ये क्यों सोचता है कि मेरा काम दूसरा नहीं कर सकता। तू ये क्यों नहीं सोचता है कि मेरे माथे पर दूसरे का करने का रंचमात्र भी बोझा नहीं है। मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं। अरे!अभी तो बहुत काम है – इसका संपादन करके अंक निकालना है, घर जाकर ये काम वो काम, काम निपटते ही नहीं हैं कभी, कितने काम हैं। ये कह रहे हैं –

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।

मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता, मुझमें पर का कुछ काम नहीं, मैं किस बात का वजन माथे पर लेकर घूम रहा हूँ, पर के करने का वजन उतार दो, दादा कहते हैं – इस वजन को, भार को भाड़ में झोंककर के पार उतर जाओ।

जिनके माथे भार वे डूबे मँझधार में।
हम तो उतरे पार झोंक भार को भाड़ में।।

किसी को बोलते हैं न कि भाड़ में जाने दो मेरी तरफ से, तो ये कह रहे हैं जितना कर्त्तृत्व का अभिमान का बोझा है, उसको भाड़ में जाने दो। ये कर्त्तृत्व का वजन उतार दो। अभी तो मुझे लड्डू बनाना है, जाने दो न भाड़ में क्या लेना-देना है। माथे पर भार क्यों रखते हो, जो होना होगा हो जायेगा। भगवान के ज्ञान में सब कुछ झलक रहा है। कर्तृत्व का वजन माथे पर नहीं है, कुछ काम नहीं है। जब तक यह नहीं समझेगा तब तक करने-धरने के नाम पर तू पर का कर्त्ता-धर्त्ता बना रहेगा? अपना करने के नाम पर शरीर का कर्त्ता-धर्त्ता बना रहेगा।

सुबह उठते ही महिलाओं को चाय बनाने का विकल्प आता है और उनसे ये कहते हैं कि ये क्यों करती हो तो कहेंगी कि ये तो मेरा ही काम है, मैं नहीं करूँगी तो कौन करेगा? ये तुम्हारा काम नहीं है, ये जड़ का काम है। ये देह की क्रिया है, अचेतन का काम है, ये मुझसे भिन्न है, मैं तो उससे न्यारा निराला तत्त्व हूँ। मैं मुझमें रहने वाला हूँ, मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता पर में मेरा विश्राम नहीं। जो अपने में रहते हैं वो मस्त रहते हैं और जो पर में रहते हैं वे दुःखी रहते हैं। आप कहाँ रहते हैं? इन्दौर में तो दिखाई नहीं दिये? घर में, दुकान में, फैक्ट्री में कहाँ? शरीर में तो रहते हैं। अरे! डॉक्टर ऑपरेशन में चीर-फाड़ करता है तो भी आत्मतत्त्व दिखाई नहीं देता, खालीपन दिखाई देता है तो फिर तुम रहते कहाँ हो ये बताओ? जब शरीर नहीं था। तुम दूसरे शरीर में थे, जब विग्रह गति में चल रहे थे जब ये शरीर छूट जायेगा तब बतलाओ कहाँ रहोगे? ये कह रहे हैं मैं मुझमें रहने वाला हूँ। मुझमें माने किसमें? अपने असंख्यात प्रदेशों को छोड़कर मैं कहीं बाहर नहीं रहता। जो अपने आपमें रहते हैं वो सुखी हैं और जो संयोगों में रहते हैं वे दु:खी रहते हैं क्योंकि संयोगों के आश्रय से सुख तलाशने वाले कभी सुखी नहीं हो सकते।

बंगले में, महल में, कहीं भी सुख नहीं है। कभी अपने आपको झोपड़ी में देखेगा, कभी मकान में, कभी बंगले में, कभी महल में, फिर महल से निकाल दिया जायेगा। तू रहता कहाँ है? इन संयोगों में मत रह। मुनिराज कहाँ रहते हैं? - जंगल में और तीर्थंकर परमात्मा कहाँ रहते हैं? अरिहंत भगवान कहाँ रहते हैं? समवशरण में, सिद्ध भगवान कहाँ रहते हैं? सिद्धालय में रहते हैं। अरे भाई! यहाँ पर हम ये ही तो समझा रहे हैं कि न अरिहंत भगवान समवशरण में रहते हैं, न मुनिराज जंगल में रहते हैं, न सिद्ध भगवान सिद्धालय में हैं, न मैं मंदिर में हूँ तो अभी कहाँ हो आप? दिख तो मंदिर में रहे हो। तुम जिसे देख रहे हो वो मैं नहीं हूँ, मैं मुझमें रहने वाला हूँ। मैं अपने असंख्यात प्रदेशों को छोड़कर कभी बाहर नहीं निकलता। शांत चित्त होकर एकांत में बैठकर कभी इस बात का चिंतन करना कि मैं रहता तो इस घर में हूँ और देखता पर घर में हूँ इसलिये दुःखी बना रहता हूँ।

मैं मुझमें रहने वाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं है। पर में कहीं शांति नहीं है। पर घर घूमते हुए बहुत दिन हो गए परन्तु शान्ति कहीं भी न मिली। घर से निकलने के बाद आपको चाहे फाइव स्टार फेसेलिटी क्यों न हों, सब तरह की सुविधायें मिल जायें, उसके बाद भी निज घर बिना शांति नहीं। पर में विश्राम नहीं होता है, शांति नहीं होती है, कहीं भी चले जाओ। जहाँ भी जाते हो सुख के लिये जाते हो, वापसी का टिकट कराकर जाते हो, इसका मतलब आप भी जानते हो, इससे ज्यादा शांति वहाँ नहीं मिलेगी। पाँच-सात दिन में घर वापिस आकर चैन की नींद सोते हुए कहते हो कि थकान उतर गई, इसका मतलब वहाँ थकने गये थे? सुविधाओं में कहीं कोई कमी नहीं, ये कह रहे हैं पर में मेरा विश्राम नहीं इसलिये दृष्टि को पर से हटाओ, दृष्टि को अपने आप पर लाओ। दृष्टि को अपने आप पर जमाने पर क्या दिखेगा? मैं शुद्ध-बुद्ध-अविरुद्ध एक पर परिणति से अप्रभावी हूँ, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ।

मैं तो अप्रभावी रहता हूँ। प्रभावी रहेगा तो दुःखी रहेगा और अप्रभावी रहेगा तो आनंदमग्न रहेगा। अपने चिदानंद धुन के अनुभव से

सहज आनंद प्राप्त होता है। किसका नाम है अप्रभावी? अप्रभावित रहने को सहज आनंद कहते हैं। मैं अप्रभावी रहता हूँ। कभी व्यक्ति भला-बुरा कहेगा, कभी गाली देगा, कभी कोई संयोग आयेगा, कभी कोई संयोग चला जायेगा, कभी कुछ होगा, पर मैं अप्रभावित रहने वाला हूँ। पर की परिणति से अप्रभावित रहने वाला तत्त्व हूँ। ये आत्मतत्त्व कैसे प्राप्त हो सकता है? इसकी उपलब्धि कैसे हो सकती है? सारे जगत के पदार्थों से दृष्टि हटाकर आत्मतत्त्व का अनुभव करने का प्रयास करो, आत्म-अनुभव से ही आत्मतत्त्व प्रकट होता है - मैं आत्मानुभूति से प्राप्त होने वाला तत्त्व हूँ। शास्त्रों से पकड़ में आने वाला तत्त्व नहीं हूँ और न ही मैं विभाव से पकड़ में आने वाला हूँ, न क्षयोपशम से, न ज्ञान की पर्यायों से, न देह से, न द्रव्य कर्मादि से पकड़ में आने वाला हूँ। मैं कैसे पकड़ में आ सकता हूँ? मैं कौन हूँ? मैं आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व हूँ, मैं वो तत्त्व हूँ जो अनुभव में आता है, जो स्वानुभव से प्रत्यक्ष होता है, मैं वो तत्त्व हूँ जो आँखें खोलने पर पकड़ में नहीं आता, मैं तो वो तत्त्व हूँ जो आँखें बंद कर अंदर में देखने पर दिखाई देता हूँ। ये जो आत्मतत्त्व है, वो बंद आँखों में दिखने वाला तत्त्व है, जिसे एक बार बंद आँखों से दिख जाता है फिर कहते हैं कि चाहे आँखे खुली हुई हो अथवा बन्द हों - वो आत्मतत्त्व सदा नजर आता है। एक बार जो इस रस को चख लेते हैं, उन्हें जगत् का अन्य कोई रस रुचता नहीं है।

आप अभ्यास कीजिये, प्रयास कीजिये आपको वो तत्त्व अवश्य पकड़ में आयेगा। एक बार यदि वो आत्मतत्त्व पकड़ में आ गया तो फिर आनंद के झरने झरेंगे तथा 'मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ' इस बात का विचार और चिंतन करते हुए कभी अपने आपको अज्ञानी नहीं समझना, दुःखी नहीं समझना, अपूर्ण नहीं समझना। मैं परिपूर्ण तत्त्व हूँ - ऐसा विचार करते हुए अपने स्वभाव में लीन हो जायें और सादि अनंतकाल के लिये सिद्धदशा को प्रगट करें।

●●●

इस पुस्तक के लेखक डॉ. संजीवकुमार गोधा आज अखिल भारतीय जैन समाज की एक जानी-मानी शख्सियत हैं। आपका जन्म राजस्थान की गुलाबी नगरी जयपुर में 26 नवम्बर 1976 को हुआ। बचपन से ही धार्मिक संस्कारों में पले-बढ़े डॉ. गोधा आज एक निर्भीक अंतरराष्ट्रीय जैन विद्वान हैं।

आप **इतिहास** एवं **जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन** विषयों में एम.ए., **जैनदर्शन** विषय से एम.फिल (गोल्ड मैडल), यूजीसी-नेट तथा **तीन लोक** विषय पर पीएच.डी. हैं।

देश-विदेश की समाज एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय-समय पर विविध अवार्ड, सम्मान, पुरस्कार एवं उपाधियों से अलंकृत किया जाता रहा है, जिनमें अखिल भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् द्वारा **पण्डितप्रवर टोडरमल पुरस्कार व युवा विद्वत्रत्न,** श्रवणबेलगोला (महामस्तकाभिषेक) युवा सम्मेलन में **आदर्श जैन युवा राष्ट्रीय सम्मान,** शिकागो (अमेरिका) द्वारा **अति विशिष्ट सेवा अवार्ड,** उत्तर प्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ उत्तर प्रदेश सरकार व फिरोजाबाद सहित ब्रज क्षेत्र की सकल जैन समाज द्वारा **अध्यात्मचक्रवर्ती,** श्री परमागम ट्रस्ट सोनागिर द्वारा **अध्यात्मवेत्ता,** ब्राह्मी सुंदरी कन्या विद्या निकेतन सहित दिल्ली की अनेक संस्थाओं द्वारा **उपाध्यायकल्प** आदि उपाधियों सहित **आचार्य समन्तभद्र पुरस्कार, युवा जैन रत्न सम्मान,** कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा **अर्हत्वचन** पुरस्कार, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा विशेष सम्मान आदि प्रमुख हैं।

आपके द्वारा लिखित एवं सम्पादित 13 पुस्तकें एवं 30 से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप 1998 से वीतराग विज्ञान मासिक के सह-सम्पादक एवं पाक्षिक समाचार पत्र जैनपथप्रदर्शक के सम्पादक रहे हैं एवं महाविद्यालय में शास्त्री वर्ग की विशेष कक्षाएँ लेते रहे हैं।

आप जयपुर के ऐतिहासिक मंदिर श्री दि. जैन पंचायत तेरहपंथ बड़ा (टोडरमलजी वाला मंदिर) के महामंत्री, श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक, जैन अध्यात्म एकेडमी ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका के डायरेक्टर, विश्वस्तर पर संचालित अर्हं व सत्पथ पाठशाला के निदेशक एवं अ. भा. जैन युवा फैडरेशन राजस्थान के प्रदेश महामंत्री रहे हैं।

आप एक लोकप्रिय प्रवचनकार के रूप में विख्यात आध्यात्मिक प्रवक्ता थे। आपकी सरल, सुबोध, ओजस्वी शैली समाज में आकर्षण का विषय बनी रही। आप पूरे विश्व में सर्वाधिक ऑनलाइन लाइव सुने जाने वाले जैन विद्वान थे। आप 1993 से नियमित प्रवचन करते हुए अंतिम समय तक लगभग 28,000 से अधिक प्रवचन कर चुके हैं। सन् 2011 से प्रतिवर्ष लगभग 2 महीने विदेशों में जैनधर्म के प्रचार-प्रसार हेतु बुलाए जाते रहे हैं। सन् 2022 तक 18 विदेश यात्राओं में अमेरिका, कनाडा, इंग्लैण्ड, अफ्रीका, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, दुबई आदि अनेक देशों के लगभग 40-50 शहरों में अपने प्रभावक प्रवचनों के माध्यम से धर्मध्वजा फहरा चुके हैं।

1 जुलाई 2021 से प्रतिदिन रात्रि 10 बजे नियमित रूप से टी.वी. के पारस चैनल पर एवं समय-समय पर जिनवाणी व आदिनाथ टी.वी चैनलों पर आप के मार्मिक प्रवचनों का प्रसारण होता रहा है। YouTube पर Dr. Sanjeev Godha नाम से चैनल पर आपके हजारों वीडियो प्रवचन उपलब्ध हैं, जिनमें जैन दर्शन के लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों का समावेश है। YouTube पर आपको जैन-अजैन 60 हजार से अधिक लोग फॉलो करते रहे हैं, जिससे चैनल पर करोड़ों व्यूज़ हैं।